स्वामीराघवाचार्य
अयोध्या

श्रीमतेरामानुजायनमः

नारायणसारसङ्ग्रह

श्री रेवासा मठ पुरी से सम्बन्धित अनन्त श्री स्वामी परमहंस
बालमुकुन्दाचार्य जी महाराज

श्री वैकुण्ठनाथ मन्दिर शास्त्रिनगर, (टाटा)

श्रीः

प्राक्कथन

श्रीमते निगमान्त महादेशिकाय नमः

श्रीमद्वेदान्तदेशिक कृपा परीवाह से श्री वेदान्तदेशिक सेवा सङ्घ ग्रन्थ माला का द्वितीय पुष्प अब विकसित हो रहा है। साधारण पार्थिव माला के पुष्प चन्द ही घण्टों में मुरझा जाने वाले होते हैं। उनकी गन्ध भी स्वल्प काल की होती है। किन्तु ग्रन्थमाला के पुष्प तो अनन्तकाल तक पूर्ण शोभा से शोभायमान होते हैं; उनकी गन्ध दूर-दूर तक फैलकर सज्जनों को आनन्द से आप्लावित करती हैं। ग्रन्थ माला के सुमनों में यह भी गुण है कि इस माला का धारण करने वाले पुरुषों में स्थित अज्ञान दुर्गन्ध को दूर कर उन्हें ज्ञान सुगन्ध से स्पृहणीय बना देते हैं। एवं विध गुणों से युक्त पुष्पों में प्रकृत नारायणसारसंग्रह द्वितीय पुष्प है।

इस ग्रन्थ में आस्तिकों से ज्ञातव्य अनेक विषय सप्रमाण प्रतिपादित हैं। तत्रापि श्री वैष्णव सज्जनों के दैनिक जीवन में अवश्य ज्ञातव्य कई विषय निरूपित हैं। इसके सङ्कलनकर्ता ने इस ग्रन्थ में एक भी श्लोक स्वकपोल कल्पित नहीं लिखा है। वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र आदि से उद्धृत करके सङ्कलन मात्र किया है। ग्रंथकार स्वयं लिखते हैं।

'श्रुतिस्मृतीतिहासेभ्यः पुराणं धर्मसंहिताम्।
सर्वतस्सारमादाय षट्पदः कुसुमैर्यथा ।।'

पञ्च संस्कारों में प्रथम संस्कार चक्र धारण के माहात्म्य से ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं। मानव में वैष्णवत्व संपादन करने वाली यही क्रिया है। इस प्रकरण में ग्रंथकार ने वेद से लेकर शिल्प शास्त्र तक के ग्रंथों से चक्राङ्कन के विषय में प्रमाण उद्धृत करके दिये हैं। इसके बाद ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की आवश्यकता आदि को सप्रमाण निरूपित किया है। इस प्रकरण में ऊर्ध्वपुण्ड्र की आकृति, धारण करने के स्थान, परिमाण आदि का विवेचन किया है। ऊर्ध्वपुण्ड्र की महिमा को बताते हुए तिर्यक्पुण्ड्र की अनुपादेयता को भी सप्रमाण बताया है। एतदनन्तर नाम संस्कार का निरूपण कया है। वैष्णव तथा दासान्त नाम रखने की आवश्यकता, इस तरह के नाम न रखने

पर सम्भाव्यमान दोष आदि का स्पष्टीकरण किया है। चतुर्थ मन्त्रसंस्कार में मन्त्रों का, विशेष रूप से द्वय, अष्टाक्षर तथा चरम श्लोक का प्रभाव पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस प्रकरण में प्रसङ्गवश आचार्य लक्षण, शिष्य लक्षण, दीक्षा ग्रहण काल आदि का निरूपण करते हुए शरणागत का भी लक्षण बताया है। अनन्तर याग संस्कार का विस्तृत विवेचन किया है। इस सन्दर्भ में श्रीमन्नारायण भगवान के परत्व को सुन्दर रीति से प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है। भगवत्प्रतिष्ठा करने में अधिकारी, उनका महात्म्य, उपादेय अनुपादेय वर्ण आकार, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति के अनुसार विभिन्न सालग्रामों का प्रणाम का महत्व, ग्रहण, आदि बताकर, भगवन्निवेदन में अयोग्य वस्तुओं का निरूपण, भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ विवेचन आदि विस्तार से किया है।

इसके अनन्तर तुलसी की महिमा, भगवदाराधन को सकाल में करना, मन्दिर आदि स्थलों में निषिद्ध आचरण, नैवेद्य समर्पण समय आवरण की आवश्यकता, मन्दिरों में दीप दान संमार्जन करना, गीत नृत्य आदि करना आदि की विशेषता बतायी गई है। इसके बाद चरणामृत तथा भगवत्प्रसाद की महिमा स्पष्ट निरूपित हुई हैं। एतदनन्तर यज्ञोपवीतोत्कर्ष, आचमन माहात्म्य, शास्त्र महिमा, स्त्री धर्म, अभिवादन विधि, सुचारु रूप से प्रस्तुत किये गये हैं।

अन्त में हमारे पूर्वाचार्य प्रवर श्री शठकोप सूरि तथा भाष्यकार श्रीरामानुज मुनि के प्रभाव, प्रपत्ति की विशेषता आदि का वर्णन करते हुए ग्रन्थ की समाप्ति की है।

इस ग्रंथ को साधारण रूप से अवलोकन करने पर भी यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके सङ्कलनकर्ता बहुग्रंथ द्रष्टा हैं। वेद, इतिहास, धर्म शास्त्र, गृह्य सूत्र आदि सभी ग्रंथों से प्रमाण दिये हैं। यह कठिन परिश्रमसाध्य कार्य है। खेद का विषय है कि इतना परिश्रम कर आस्तिक सज्जनों का महोपकार जिन्होंने किया उन महापुरुष के बारे में अब हम कुछ बताने की स्थिति में नहीं हैं। जो अब उपलभ्यमान मूल पुस्तक है वह संवत् १९७० में बम्बई लक्ष्मी वेङ्कटेश मुद्रणालय में मुद्रित है। किन्तु उसमें संकलनकर्ता का नाम नहीं दिया है। सङ्कलनकार ने ग्रन्थारम्भ में एक श्लोक से श्रीकृष्णमाचार्य नामक आचार्य की वन्दना करते हैं। इससे इतना मालूम पड़ता है कि ग्रंथकार श्रीकृष्णमाचार्य के शिष्य हैं तथा परम वैष्णव हैं। इस ग्रंथ के प्रणयन से इन्होंने आस्तिक जनता को महोपकार किया है। यह कभी भूला नहीं जा सकता।

संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार कम होते जाने वाले आजकल के समय में संस्कृत ग्रंथ को पढ़कर लाभ उठाने वाले बहुत कम व्यक्ति ही होते हैं। संस्कृत न

जानने वाले व्यक्तियों के लिए टीका की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति वेदान्त शिरोमणि श्री रामप्रपन्नरामानुज दास ने सरल हिन्दी में टीका लिखकर की है। श्लोक के भाव को सुन्दर ढंग से समझाया है। अप्रसिद्ध फूल पत्ते आदि का नाम प्रचलित हिन्दी में दिये हैं। इन्होंने अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

आजकल के जमाने में सभी कार्य अर्थ पर आधारित हैं। पुस्तक जितनी भी सुन्दर हो, उपयोगी हो छापने के बिना जनता के पास पहुँचेगी नहीं। यह कार्य इस महंगाई के समय में बह्वथ साध्य है। इसे छापकर प्रकाशित करने का पूर्ण श्रेय, इस के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण धनराशि को देकर उपकृत करने वाले श्रीयुत ठाकुर प्रसाद रामानुज दास को है।

इनको श्री वेदान्तदेशिक कृपा से आयुरारोग्य भगवद्भक्त्यादि सभी प्रकार का उत्तम मंगल प्राप्त हो, यही हमारी प्रार्थना है।

त्रिदण्डिमठ
दारागंज, प्रयाग

स्वामी पुरुषोत्तमाचार्य
सम्पादक, श्री देशिक सुधा

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. मङ्गलाचरण	...	१
१—विष्णु	...	१
२—श्रीशठकोपसूरि	...	१
३—श्री रामानुजाचार्य	...	१
४—श्री कृष्णमाचार्य	...	२
१. इस ग्रंथ का मूल निर्देश	...	२
३. पुराणों का सात्विक आदि भेद से विभाग	...	२
४. ग्रंथ निर्माण का प्रयोजन	...	४
५. पञ्च संस्कार निर्देश	...	४
६. शंख चक्रधारण माहात्म्य	...	५
१—तप्त चक्राङ्कन के विषय में प्रमाण	...	५
२—तप्त चक्राङ्कन के फल	...	१२
३—शंखचक्रधारण हीन के दोष	...	१७
४—चक्राङ्कित की श्रेष्ठता	...	१६
७. ऊर्ध्व पुण्ड्रधारण	...	२१
१—उर्ध्वपुण्ड्रधारण : प्रमाण	...	२१
२—उर्ध्वपुण्ड्र की आकृति	...	२२
३—पुण्ड्र के लिये मृत्तिका ग्रहण योग्य स्थान	...	२२
४—ललाटादि स्थानों में पुण्ड्र लगाते समय का ध्यान	...	२२
५—पुण्ड्र का परिमाण	...	२३
६—पुण्ड्र के न धारण करने में दोष	...	२४
७—पुण्ड्रधारण का फल	...	२४
८—त्रिपुण्ड्र धारण का निषेध	...	२७
९—जटा भस्म धारण व मुण्डन का निषेध	...	२६
१०—मृत् भस्म व चन्दन धारण की व्यवस्था	...	३१
११—सच्छिद्र पुण्ड्र धारण विधि	...	३२
१२—ब्राह्मण आदि की पुण्ड्र संख्या	...	३३

विषय पृष्ठ

८. नाम संस्कार ... ३५

१—वैष्णव नामकरण विधान ... ३५

२—दासान्त नामकरण का विधान ... ३५

३—दासान्त नामकरण का फल ... ३५

४—भगवत्कैंकर्य की महिमा ... ३७

९. मन्त्रसंस्कार ... ४२

१—द्वय मन्त्र का प्रभाव ... ४२

२—अष्टाक्षर मन्त्र का माहात्म्य ... ४७

३—चरम श्लोक का माहात्म्य ... ४९

४—वैष्णव को ही मन्त्रोपदेश का अधिकार ... ५२

५—अवैष्णव से मन्त्रोपदेश का निषेध ... ५२

६—आचार्य का लक्षण ... ५३

७—शिष्य का लक्षण ... ५५

८—दीक्षा काल का निर्णय ... ५६

९—शरणागत का लक्षण ... ५७

१०. यागसंस्कार ... ६०

१—नारायण भगवान ही पूजनीय हैं ... ६०

२—नारायण भगवान ही सर्वश्रेष्ठ है ... ६१

३—क्षूद्र देवताओं की पूजा का निषेध ... ६४

४—सात्विक-राजस आदि भेद से देवताओं का भेद ... ६४

५—अर्चावतार की महिमा ... ६६

६—स्वयं व्यक्त स्थल ... ६७

७—प्रतिष्ठा में अधिकारी ... ६८

८—अवैष्णव से प्रतिष्ठापित मूर्ति की वन्दना का निषेध ... ६९

९—आराधना की पद्धति ... ७०

१०—शालग्राम भगवान की महिमा ... ७०

११—शालग्राम भगवान का लक्षण ... ७१

१२—शालग्राम भगवान के पूजा का फल ... ७३

११. भगवदाराधना की पद्धति ... ७७

१—आराधना का नव प्रकार ... ७७

२—नैवेद्य काल में वर्जित ... ७८

विषय		पृष्ठ
३—आराधना का प्रकार	...	७८
४—अष्टाङ्ग प्रणाम	...	७९
५—प्रणाम करने का प्रकार	...	८०
६—प्रणाम करने का माहात्म्य	...	८०
७—भाव का दोष	...	८२
८—क्रिया का दोष	...	८२
९—काल का दोष	...	८३
१०—संसर्ग का दोष	...	८४
११—जाति का दोष	...	८४
१२—और दूसरी निषिद्ध वस्तुयें	...	८४
१३—लवण आदि वस्तु को शूद्रों से लेने में दोष नहीं	...	८७
१४—राक्षसी भोजन	...	८८
१५—भगवान की आराधना में पत्र और पुष्पों का निर्णय	...	९०
१६—तुलसी की महिमा	...	९१
१७—तुलसी ग्रहण का प्रकार	...	९२
१८—ग्रहण करने योग्य पुष्प	...	९३
१९—आराधना का समय	...	९३
२०—बत्तीस अपराध	...	९५
२१—आराधना काल में आवरण का निर्णय	...	९६
२२—निषिद्ध अन्नों का वर्णन	...	९७
२३—दृष्टि का दोष	...	९८
२४—आराधना के समय में वस्त्र से आवरण	...	९९
२५—आराधना के समय में धारण करने वाले वस्त्रों का लक्षण	...	१०२
२६—कटि सूत्र का लक्षण	...	१०२
१२. दीपदान का माहात्म्य	...	१०२
१३. भगवान की सन्निधि में सम्मार्जन का माहात्म्य	...	१०६
१४. भगवान की सन्निधि में गीत व नृत्यकरण माहात्म्य	...	१२५
१५. भगवान की सन्निधि में नाम संकीर्तन माहात्म्य	...	१०६
१६. श्रीपाद तीर्थ का माहात्म्य	...	१०७
१७. भगवत्प्रसाद का माहात्म्य	...	१०९

विषय		पृष्ठ

विषय		पृष्ठ
१८. अन्त्यज आदि को भगवत्प्रसाद देने का निषेध	...	१११
१६. षट् विध प्रसाद का निरूपण	...	११३
२०. शिव के प्रसाद ग्रहण का निषेध	...	११६
२१. अन्य देवता के प्रसाद ग्रहण का निषेध	...	११८
२२. अवैष्णव से प्रसाद लेने का निषेध	...	११८
२३. असत् वस्तु के स्पर्श का निषेध	...	११६
२४. देवालय का लक्षण	...	१२०
२५. आतुर की शुद्धि का नियम	...	१२१
२६. गर्म जल से स्नान की प्रशंसा	...	१२१
२७. विष्णु विमुखों की निन्दा	...	१२२
२८. गरुड़ वाहन भगवान की महिमा	...	१२२
२६. भगवान के उत्सव में स्पर्श दोष नहीं होता	...	१२३
३०. तुलसी माला की महिमा	...	१२४
३१. यज्ञोपवीत का महत्व	...	१२६
३२. आचमन विधि	...	१३१
३३. आचार महिमा	...	१३४
३४. शास्त्र महिमा	...	१३४
३५. आश्रम धर्म	...	१३६
३६. स्त्री धर्म	...	१४७
३७. अभिवादन विधि	...	१३६
३८. श्री शठकोपसूरि का प्रभाव	...	१४१
३६. श्री रामानुज मुनि का प्रभाव	...	१४२
४०. दो प्रकार के प्रपन्नों का निरूपण	...	१४४
४१. भक्ति का लक्षण	...	१४४
४२. नवविधा भक्ति	...	१४५
४३. सिद्धरूपा भक्ति	...	१४५
४४. आर्तप्रपन्न का लक्षण	...	१४६
४५. दृप्त प्रपन्न का लक्षण	...	१४६
४६. तदीयाराधन माहात्म्य	...	१४८
४७. अवैष्णव पूजा निषेध	...	१५२
४८. वैष्णवोत्कर्ष	...	१५७
४६. भागवतलक्षण	...	१५८
५०. विष्णु भक्त महिमा	...	१६१

श्रीमते रामानुजाय नमः

राघवाचार्य

श्रीः

श्रीमज्जगन्नाथो विजयतेतराम्

श्रीमते रामानुजाय नमः

अथ

नारायणसारसंग्रहः

सरल हिन्दी भाषाटीका सहितः

मङ्गलाचरणम्

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्याये सर्वविघ्नोपशान्तये ।।१।।

सरल हिन्दी भाषा टीका

श्वेत वस्त्र को धारण करने वाले, चन्द्रमा के समान वर्ण वाले, प्रसन्न मुख वाले, चार भुजा वाले, समस्त चेतन-अचेतनों में व्याप्त रहने वाले श्री विष्णु भगवान् को सभी विघ्नों की शान्ति के लिए ध्यान करता हूँ ।।१।।

यस्य द्विरद वक्त्राद्याः पारिषद्याः परश्शतम्।
विघ्नं निघ्नन्ति सततं विष्वक्सेन तमाश्रये ।।२।।

स० हि० भा० टी०—जिनके दो दाँत आदि के टेढ़े हैं, सैकड़ों अर्थात् अनन्त नित्य-मुक्त पार्षद्गण पीछे रहने वाले हैं, निरन्तर विघ्न को नाश किया करते हैं, उन श्री विष्वक्सेन को आश्रयण अर्थात् शरणागति करता हूँ ।।२।।

वकुलाभरणं वन्दे जगदाभरणं मुनिम्।
यश्श्रुतेरुत्तरं भागं चक्रे द्राविडभाषया ।।३।।

संसार के भूषण स्वरूप, बकुल अर्थात् मौलश्री नामक पुष्प के भूषण वाले श्री शठकोप मुनि की वन्दना करता हूँ; जिन्होंने वेद के उत्तर भाग (उपनिषद् भाग) को द्राविड भाषा में बना डाला ।।३।।

श्रीरङ्गमङ्गलमहोत्सववर्द्धनाय वेदान्तपान्थपरमार्थ समर्थनाय।
कैङ्कर्य लक्षण विलक्षण मोक्षभाजो रामानुजो विजयते यतिराजराजः ।।४।।

श्री रङ्गनाथ भगवान के मङ्गल रूप महोत्सव को बढ़ाने के लिए, वेदान्त शास्त्र के पथिक रूप से उस वेदान्त शास्त्र को सत्य समर्थन करने के लिये, कैङ्कर्य अर्थात् भगवान् की सेवा रूप लक्षण के द्वारा विगत लक्षण स्वरूप अप्राकृत देश त्रिपाद्विभूति में रहने वाले भगवान् श्रीमन्नारायण की नित्य सेवा रूप मोक्ष देने के लिये पात्र स्वरूप सन्यासियों के राजाओं का राजा श्रीरामानुज स्वामी विजय को प्राप्त करते हैं अर्थात् उत्कृष्ट स्थान में रहते हैं ।।४।।

विवरण—उक्त श्लोक में 'भाजः' पद बहुवचन नहीं है, प्रत्युत 'भज एव भाजः' स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर आदि स्वर की वृद्धि हुई है ।

यस्यांघ्रिपद्मं शरणागतानां संसारसिन्धोस्तरणैकपोतम् ।
दयानिधिं देहभृतां शरण्यं श्रीकृष्णमार्यं शरणं प्रपद्ये ।।५।।

जिनके चरणकमल शरणागतों के लिये संसार रूप समुद्र से पार होने के लिये एकमात्र जहाज स्वरूप हैं; देहधारियों के रक्षक दया के निधि श्रेष्ठ श्री कृष्णाचार्य स्वामीस्वरूप उपाय की शरणागति करता हूँ ।।५।।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिस्सर्वत्र गीयते ।।६।।

वेद में, रामायण में, पुराण में तथा महाभारत में निश्चय रूप से आदि, मध्य और अन्त में सर्वत्र हरि अर्थात् नारायण गाये जाते हैं ।।६।।

श्रुतिस्मृतीतिहासेभ्यः पुराणं धर्मसंहिताम् ।
सर्वतस्सारमादाय षट्पदः कुसुमैर्यथा ।।७।।

भ्रमर जैसे फूलों से रस को निकाल लेता है, वैसे ही वेद-धर्मशास्त्र इतिहासों से तथा पुराण और धर्म सम्बन्धि संहिता के सब ओर से सारतत्व को लेकर यह ग्रन्थ लिखा गया है ।।७।।

पद्म पुराण में लिखा है—

वैष्णवं नारदीयञ्च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ।।
षडेतानि पुराणानि सात्त्विकानि मतानि मे ।।८।।

हे मङ्गल दर्शन वाली पार्वती ! विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, मङ्गल रूप भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्म पुराण और वराह पुराण—ये छः पुराण सात्विक मेरे सिद्धान्तानुसार माने गये हैं ।।८।।

पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है—

"ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ॥९॥
मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ॥१०॥

ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, वामन पुराण, और ब्रह्म पुराण को राजस मेरे मतानुसार जानो ॥९॥

मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, लिङ्ग पुराण, शिव पुराण, स्कन्द पुराण और अग्नि पुराण—इन छः को तामस पुराण मेरे मतानुसार जानो ॥१०॥

तथैव स्मृतयः प्रोक्ता ऋषिभिस्त्रिगुणान्विताः ।
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्शुभदर्शने ॥११॥

हे मङ्गल दर्शन स्वरूपिणि ! उसी प्रकार ऋषियों ने सात्त्विक, राजस और तामस रूपिणी तीनों गुणों से युक्त स्मृतियों को कहा है ॥११॥

वासिष्ठं चैव हारीतं व्यासं पाराशरं तथा ।
भारद्वाजं काश्यपञ्च सात्त्विका मोक्षदाश्शुभाः ॥१२॥

वसिष्ठ स्मृति; हारीत स्मृति, व्यास स्मृति, पाराशर स्मृति, भारद्वाज और काश्यप स्मृति सात्त्विक मङ्गल रूपा मोक्ष देने वाली हैं ॥१२॥

वामनं याज्ञवल्क्यं च आत्रेयं दाक्षमेव च ।
कात्यायनं वैष्णवं च राजसास्स्वर्गदाश्शुभाः ॥१३॥

वामन स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, अत्रि स्मृति, दक्ष स्मृति, कात्यायन स्मृति और विष्णु स्मृति-राजस् मङ्गलरूपा स्वर्ग देने वाली हैं ॥१३॥

गौतमं बार्हस्पत्यं च सांवर्तं च यमं स्मृतम् ।
सांख्यं चौशनसं देवि तामसा निरयप्रदाः ॥१४॥

हे देवि ! गौतम स्मृति, बार्हस्पत्य स्मृति, संवर्त स्मृति, यम स्मृति, सांख्य स्मृति और उशनस् स्मृति तामस नरक देने वाली हैं ॥१४॥

सात्त्विका मोक्षदाः प्रोक्ता राजसास्स्वर्गदाश्शुभाः ।
तथैव तामसा देवि निरयप्राप्तिहेतवः ॥१५॥

हे देवि ! सात्त्विक पुराण-स्मृतियाँ मोक्ष देने वाली हैं, राजस् पुराण-स्मृतियाँ मङ्गल रूपा स्वर्ग को देने वाली कही गई हैं; उसी प्रकार तामस पुराण-स्मृतियाँ नरक प्राप्ति के कारण कही गई हैं ॥१५॥

सात्विकानां पुराणानां स्मृतीनां चैव सर्वशः ।
श्रीवैष्णवहितार्थाय क्रियते सारसंग्रहः ।।१६।।

सभी सात्विक पुराणों के और सभी स्मृतियों के निश्चय रूप से श्रीवैष्णवों के हित के लिये साररूप से संक्षेप या एकत्रित स्वरूप (नारायण सारसंग्रह) किया जाता है अर्थात् बनाया जाता है ।।१६।।

पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है—

ये कण्ठलग्नतुलसीर्नलिनाक्षमालाः
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः
ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ।।१७।।

जो लोग गले में लगी हुई तुलसी और कमलाक्ष की माला वाले हैं; जो लोग दोनों बाहों के मूल में अच्छी तरह से चिह्नित शंख-चक्र वाले हैं और जो लोग ललाट पटल पर सुशोभित ऊर्ध्व पुण्ड्र वाले हैं; वे श्रीवैष्णव लोग संसार को शीघ्र पवित्र कर देते हैं ।।१७।।

वैष्णवा द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरतस्तथा ।
बाह्यास्तु शंखचक्राभ्यामान्तरा वीतरागतः ।।१८।।

श्रीवैष्णव लोग दो प्रकार के कहे गये हैं—बाहर से और भीतर से । बाहर वाले तो शंख-चक्र के द्वारा होते हैं, किन्तु भीतर वाले वैराग्य से होते हैं ।।१८।।

पराशर स्मृति में लिखा है—

आद्यं तु शङ्खचक्रादिधारणं वैष्णवं स्मृतम् ।
पुण्ड्रं नाम क्रिया चैव मन्त्रं चैवार्चनं हरेः ।।
संस्काराः पञ्च कर्तव्या ब्राह्मणस्य विधानतः ।
विधिना शंखचक्रादिधारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ।।

पहला शंख-चक्रादिकों का धारण करना वैष्णव-संस्कार कहा गया है। अनन्तर ऊर्ध्वपुण्ड्र एवं श्रीविष्णु सम्बन्धि नाम-संस्कार की क्रिया तथा मन्त्र और श्रीमन्नारायण की पूजा अर्थात् शरणागति करना; ब्रह्मवेत्ता मुमुक्षु चेतन के वेद-पाञ्चरात्र आदि शास्त्रों के विधान से पाँच संस्कार करने चाहिये । शास्त्रों की विधि से शंख-चक्रादि ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे ।

यहाँ तप्त चक्रादिकों के धारण करने के विषय में प्रमाण लिखे जाते हैं—

ऋग्वेद के अष्टक ७ अध्याय ३ सूक्त १६ वर्ग ८ मण्डल में लिखा है और यही मन्त्र यजुर्वेद के तैत्तिरीयारण्यक प्रश्न १ अनुवाक ११ में भी लिखा है तथा यही

मन्त्र सामवेद के पूर्वार्चिक भाग में प्रपाठक ६ द्वितीयार्ध में लिखा है; इस प्रकार तीनों वेदों में यह मन्त्र प्रतिपादित है—

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामोऽश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ।।"

भावार्थ—हे चतुर्मुख ब्रह्मा के नियामक ! प्रपञ्च (जगत्) की चेष्टा सामान्य के हेतु सङ्कल्प (इच्छा) करने वाले आप, जगत् के शरीरों को अन्तर्यामी होकर व्याप्त करते हो। सर्व व्यापक रूप आपका सुदर्शन चक्र, अग्नि से तप्त कर भुज पर लगाने से उत्पन्न होने वाले किणवत्व सम्बन्ध से आस्तिक जन सामान्य में रहने वाला है। उस सुदर्शन चक्र से बिना तपे हुये शरीर वाला अविनष्ट पाप वाला है अर्थात् उसके प्रारब्ध और सञ्चित पाप दग्ध नहीं हुए हैं; अतएव उन परमात्मा को नहीं प्राप्त होता है। इस तप्त सुदर्शन को भुज पर धारण करने वाले दग्ध पाप वाले होकर उन पर ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं।

और भी शतपथ ब्राह्मण भाग में सामवेद की मैत्रावरुण शाखा में इस प्रकार लिखा है—

देवा वो ये रिधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयत मानवा लोक-सृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वहन्ति। अग्निना वं तप्तं द्विभुजैर्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रमालिखेत्। तस्माद् द्विरेखं भवति, न पुनरागमनमेति, ब्रह्मणस्सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।"

हे प्रभो ! तुम्हारे जो देव स्वरूप दास लोग हैं, ईश्वर के प्रापक-स्वरूप बाहु-मूल पर धारण किये हुए सुदर्शन चक्र के द्वारा शरणागत मनुष्य लोग संसार की सृष्टि को विस्तार करते हैं, ब्रह्म को जानने वाले मुमुक्षु लोग, उस सुदर्शन चक्र को धारण करते हैं। अग्नि से निश्चय रूप से तपे हुये शंख-चक्र को दोनों भुजाओं के मूल में धारण करना चाहिये तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र को ललाट आदि स्थानों में धारण करना चाहिये। तिस हेतु से दो प्रकार की रेखा वाला [भगवान् के चरणाकृति दोनों पार्श्व, एक प्रकार की रेखा वाला और दोनों पार्श्वों के मध्य में दीप कलिका को आकार वाली श्री-दूसरे प्रकार की रेखा वाली] होता है। फिर संसार में आने को नहीं प्राप्त हैं। परब्रह्म के सायुज्य को अर्थात् राजा के भाग रूप ऐश्वर्य को राजपुत्र जैसे प्राप्त करता है, तद्वत् भोग को और परब्रह्म के सहित उनके लोक को प्राप्त करता है।

सामवेद की मैत्रायणीय शाखा में लिखा है और अथर्वण वेद में भी लिखा है—

"पवित्रमित्यग्निः, अग्निर्वै सहस्रारः, सहस्रारो नेमिः नेमिना तप्त-तनूः ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।।"

परिशुद्धि करने वाला भगवान् का सुदर्शन चक्र, अग्नि के सम्बन्ध से ताप के योग्य धर्मवान् होने से अग्निरूप औष्ण्य रूप धर्म से युक्त होने के कारण अग्निरूप होकर निश्चय रूप से हजारों छेदन के योग्य कंगूरे वाला अर्थात् हजारों आरा वाला—ऐसे सहस्रों आरा से युक्त वर्तुल अर्थात् गोल आकार वाले सुदर्शन चक्र से तपे हुये भुज वाला प्रपन्न चेतन परब्रह्म श्रीमन्नारायण के, पिता के राजभोग का अधिकारी राजपुत्र की भाँति त्रिपाद्विभूतिरूप महावैकुण्ठ स्वरूप भोग्य को और नारायण के सहित उनके लोक को प्राप्त करता है।

वेद के बृहत् आरण्यक भाग में लिखा है—

"चक्रं बिभर्ति वपुषाभितप्तं बलं देवानाममितस्य विष्णोः।
स एति नाकं दुरितान्विधूय प्रयान्ति यद्यतयो वीतरागाः।।
एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिह्नैरङ्किता लोके सुभगा भवामः।
तद्विष्णोः परमं पदं ये गच्छन्ति लांछिताः।।
चक्रमादायाग्नौ प्रतप्य ब्राह्मणस्योत्तरे बाहौ धारयेत्।।

भावार्थ—निस्सीम प्रभाव वाले श्रीविष्णु भगवान् के देव स्वरूप भक्तों का समूह, दाहिने भुजमूल में अच्छी तरह अग्नि में तपाये हुये सुदर्शन चक्र को धारण करता है, वह पापों को नाश करके त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ को जाता है; जिस महा वैकुण्ठ में संसार के पदार्थों में आसक्तिरहित सन्यासी लोग जाते हैं। हम, सबसे बड़े पराक्रमी श्रीविष्णु भगवान् के इन शंख-चक्रादि चिह्नों के द्वारा अङ्कित हुए अर्थात् चिह्नित हुए संसार में उत्तम ऐश्वर्य वाले होते हैं। जो शंख-चक्र से चिह्नित हुए—महात्मा लोग, श्रीविष्णु भगवान् के उस परम पद अर्थात् श्रेष्ठ स्थान को जाते हैं। आचार्य, सुदर्शन चक्र को लेकर अग्नि में तपाकर ब्रह्मवेत्ता मुमुक्षु चेतन के दाहिने भुजमूल में धारण करवावे।

बह्वृचेषु बाष्कल संहितायाम्—

निचिक्षेप सुषणमभिद्यमानं मध्ये बाहुमदधत्सुदर्शनं विष्णोरिदं भूरिदं भूरितेजः प्रधर्षति दिवा नक्तं बिभृयुस्तज्जनासः।।

भावार्थ—सर्व व्यापक श्रीविष्णु भगवान् के इस अत्यन्त तेज वाले, अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष—चारों पुरुषार्थों के देने वाले, आराओं से युक्त, विनाश-रहित सुदर्शन चक्र को दाहिनी बाहु के मध्य में धारण करेगा, वह निश्चय सब पापों से रहित हो जायगा। दिन-रात सुदर्शन चक्र, उसके विरोधियों को नाश किया करता है। अतः उन श्रीविष्णु भगवान् के दास लोग तप्त सुदर्शन चक्र को अवश्य धारण करें।

विवरण--उपर्युक्त मन्त्र में 'निचिक्षेप' लिट् लकार की क्रिया और 'अदधत्' लङ् लकार की क्रिया—दोनों विधिलिङ् क्रिया के अर्थ में छान्दस् प्रयोग होने के कारण प्रयुक्त हुए हैं।

छान्दोग्य परिशिष्ट और ऋग्वेदीय बाष्कल शाखा में भी निम्नलिखित श्रुति से शंख-चक्र का धारण करना सिद्ध है; जिसको 'रामार्चन-चन्द्रिका' के कर्त्ता श्रीशङ्कराचार्य आनन्दवन जी महाराज तथा 'निर्णय-सिन्धु' के कर्त्ता आदि सभी निबन्धकारों ने उद्धृत किया है—

"तप्ते विष्णोरब्जचक्रे पवित्रे जन्माम्भोधिं तर्तवे चर्षणीन्द्राः।
मूले बाह्वोर्दधतेऽन्ये पुराणलिङ्गान्यङ्गे तावकान्यर्पयन्ति ॥

भावार्थ—ज्ञानी लोग, संसार सागर से पार होने के लिये नित्य-मुक्त-बद्ध—त्रिविध चेतन और शुद्ध सत्व-मिश्रसत्व—सत्व शून्य का आधार—त्रिविध अचेतनों में स्वरूप-गुणों से नित्य व्यापक रहने वाले श्रीविष्णु भगवान् के पवित्र स्वरूप तप्त जल में उत्पन्न हुए शंख-चक्र को दोनों बाहों के मूल में धारण करते हैं। दूसरे प्राचीन ज्ञानी लोग अङ्ग रूप भुजाओं के मूल आदि स्थानों में तुम्हारे पञ्च आयुध चिह्नों को धारण करते हैं।

आपस्तम्ब शाखायां काठकेच—"अग्निना वै होतारश्चक्रं पाञ्चजन्यं सुतप्तौ द्विभुजौ धारयेत्, आत्महितमाचरेत् आचार्याय सन्मुखं प्रपद्येत्, तस्माद्वैकुण्ठो भवति, न पुनरागमनमेति सायुज्यं सालोक्यतामाप्नोति ॥ चरणं पवित्रं विततं पुराणमित्यारम्य सुधितां दधात्वित्यन्तम्।"

भावार्थ—अग्नि में निश्चय रूप से हवन करने वाले, गुरु के द्वारा अच्छी तरह से तपाये हुये 'पाञ्जन्य' नामक शंख और चक्र को दोनों भुज मूल में धारण करें:—जीव के कल्याण-कार्य को आचरण करे। गुरु की शरणागति को प्राप्त करे; उससे वैकुण्ठ का अधिकारी होता है, फिर संसार में आने को नहीं पाता है, श्रीमन्नारायण के भोग रूप सायुज्य और सालोक्य मुक्ति को पाता है।

"चरणं पवित्रं विततं पुराणम्"—यहाँ से आरम्भ करके "सुधितां दधातु" यहाँ तक ॥

विवरण—उपर्युक्त श्रुति यजुर्वेद की कठ शाखा के तृतीय प्रश्न के तृतीय अनुवाक में भी वर्णित है। उक्त श्रुति में 'अग्निना' छान्दस् प्रयोग होने के कारण तृतीया का सप्तमी अर्थ किया गया है।

यजुषि काठके तृतीय प्रश्ने तृतीयानुवाके—

चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।
तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः, अतिपाप्मानमरातिं तरेम ।।
लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रं ज्योतिष्मद् भ्राजमानं महस्वत् ।
अमृतस्य धारा बहुधा दोह्मानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु ।।

भावार्थ—परिशुद्धि करने वाला अनादि कालावस्थायी उत्तम गति का साधन सुदर्शन चक्र, शुद्ध मुद्रारूप से भगवत्समाश्रित भक्तों के भुज पर विराजमान हो रहा है; जिस भुज मुद्रित तप्त सुदर्शन से पापों से रहित अर्थात् पवित्र हुआ अनादि काल से सञ्चित पाप-कर्मों को नाश करता है। परिशुद्धि करने वाला समस्त दोष गन्ध से रहित भुज पर मुद्रा रूप से धारण किये हुये उस सुदर्शन चक्र से पवित्र हुए हम भगवान् के दर्शन का प्रतिबन्धक शत्रु स्वरूप अविद्याग्रन्थिरूप पाप को नाश करने वाले होवें भगवान् के लोक त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ का उपाय स्वरूप प्रचण्ड ज्वालाओं से युक्त देदीप्यमान किरणों से सुशोभित अत्यन्त अप्रतिहत प्रकाशशाली परम तेजस्वी परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष के अनुभव-प्रकारों को बहुत प्रकार वाले नित्य ऐश्वर्यों को देने वाला अर्थात् पूर्ण करने वाला परम पवित्र सुदर्शन चक्र हमको परम पद अर्थात् वैकुण्ठ लोक में सुप्रतिष्ठित करो।

नारद पञ्चरात्र में लिखा है—

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यमायसमेव च ।
चक्रं कृत्वा तु मेधावी धारयेद्वै विचक्षणः ।।
द्वादशारन्तु षट्कोणं वलयत्रयसंयुतम् ।
हरेस्सुदर्शनं नित्यं धारयेत्तद्विचक्षणः ।।

भावार्थ—दूरदर्शी ज्ञानी पुरुष, सोना, चाँदी, तांबा, काँसा और लोहे के निश्चय रूप से चक्र बनाकर अवश्य धारण करे। दीर्घदर्शी, उस बारह आरा वाले और छः कोण वाले तीन वलयों से युक्त नारायण के सुदर्शन चक्र को सब काल में धारण करे।

ब्रह्मपुराण में लिखा है—

अग्नितप्तं पवित्रञ्च धृत्वा वै बाहुमूलयोः ।
त्यक्त्वा यमपुरं घोरं याति विष्णोः परं पदम् ।।

दोनों बाहों के मूल में अग्नि से तप्त अर्थात् तपाये हुए सुदर्शन-चक्र और पाञ्चजन्य शंख को निश्चय रूप से धारण करके भयङ्कर यमपुर को त्यागकर श्रीविष्णु भगवान् के परम पद रूप त्रिपाद्विभूति महा वैकुण्ठ को जाता है।

वामन पुराण में लिखा है—

लीलयापि लिखेद्यस्तु बाहुमूले सुदर्शनम् ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमां गतिम् ।।

परन्तु, जो खेल से भी बाहु के मूल में सुदर्शन चक्र को लिखे, वह करोड़ों परिवार को उद्धार करके परम गति रूप मोक्ष को प्राप्त करेगा ।

मार्कण्डेय पुराण में लिखा है—

धारयेद्विष्णुभक्तस्तु चक्रं बाहौ तु दक्षिणे ।
वामे तु शंखराजानं वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।।

श्री विष्णु भक्त, दाहिनी बाहु में सुदर्शन चक्र को धारण करे और बायीं बाहु में शंख-राज पाञ्चजन्य को धारण करे तो, विष्णु भगवान् के स्थान महावैकुण्ठ को प्राप्त करेगा ।

कूर्म पुराण में लिखा है—

चक्रादिधारणं पुंसां परसंबन्धवेदनम् ।
पातिव्रत्यनिमित्तं हि वलयादिविभूषणम् ।।

मनुष्यों के चक्र आदिकों का धारण करना परमात्मा के सम्बन्ध का जनाने वाला होता है; जैसे स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य धर्म का कारण कड़ा आदि भूषण है ।

वृहन्नारदीय पुराण में लिखा है—

सुदर्शनेन यस्यांगं लांछितं तु भवेत्सदा ।
देहे तस्य वसेन्नित्यं श्रिया युक्तस्स्वयं हरिः ।।

सुदर्शन चक्र के द्वारा जिसका दाहिने भुज-मूल अंग सर्वदा चिह्नित होवे, तो उसके शरीर में लक्ष्मी से युक्त स्वयं अर्थात् आप नारायण सदा वास करते हैं ।

चक्रायुधाङ्कितं दृष्ट्वा यमोऽपि हृदि शङ्कितः ।
प्रणामं दूरतः कृत्वा विष्णुभक्तं विमत्सरम् ।।

यमराज भी मन में भयभीत रहा हुआ, ईर्ष्या-द्वेष से रहित सुदर्शन चक्र रूप आयुध से चिह्नित विष्णु-भक्त को देखकर दूर से प्रणाम करके चला जाता है ।

चक्राङ्किताय विप्राय विष्णुभक्ताय धीमते ।
भिक्षामात्रप्रदानेन वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ।।

सुदर्शन चक्र से चिह्नित ज्ञानी विष्णु-भक्त ब्राह्मण को भिक्षामात्र के देने से वैष्णवी गति (त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ) को प्राप्त करेगा।

वह्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लांछिताः।
सर्वपापानि संतीर्य भविष्यन्ति सुरोपमाः ॥

अग्नि से तप्त सुदर्शन चक्र के द्वारा दाहिनी बाहु के मूल में निश्चित रूप से चिह्नित लोग सब पापों से रहित होकर देवताओं के समान हो जायँगे।

अग्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लाञ्छितः।
रौरवात्कुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥

और अग्नि से तपे हुये सुदर्शन चक्र के द्वारा दाहिने भुज-मूल में चिह्नित मनुष्य रौरव नामक नरक से वंश को उद्धार करके विष्णु लोक में पूजित होता है।

शाण्डिल्य स्मृति में लिखा है—

पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च।
अङ्कयेच्छंखचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ॥

पशु-पुत्रादिक सबको और घर की सभी सामग्रियों को शंख-चक्र से चिह्नित करे तथा विष्णु-सम्बन्धी नामकरण करे।

स्त्रिया सहैव कर्तव्यं गृहस्थस्य विधानतः।
संस्कारपञ्चकं तेन भवेत्सा धर्मचारिणी ॥

गृहस्थ के विधान के अनुसार स्त्री के साथ ही पाँचों संस्कार करना चाहिये। उससे वह स्त्री धर्म के अनुसार चलने वाली होगी।

तापादिपञ्चसंस्कारा गृहस्थस्य यथाविधि।
आचार्येण सदा कार्यास्स्वगृह्योक्तविधानतः ॥

गृहस्थ के लिए जैसी शास्त्र की विधि अर्थात् आज्ञा है, गुरु महाराज के द्वारा अपने गृह्य सूत्र ग्रन्थ में कहे हुए विधान के अनुसार सब काल में ताप आदि पाँचों संस्कार करने चाहिये।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

प्रथमं तापसंस्कारं तापसैर्मुनिभिस्स्मृतम्।
सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणाञ्च द्विजसत्तमाः ॥

हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ जन! ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्यास—सब आश्रमों में वास करने वालों के लिये और स्त्रियों के लिये तपस्वी मुनियों ने पहला ताप-संस्कार कहा है।

अग्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लाञ्छिताः ।
ते यान्ति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।।

और वे, अग्नि से तपे हुये सुदर्शन चक्र के द्वारा दाहिनी बाहु के मूल में चिह्नित मनुष्य फिर संसार में जन्म-मरण रूप आवृत्ति से रहित सर्वोत्तम स्थान (त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ) को चले जाते हैं ।

अग्निनैव तु सन्तप्तं चक्रमादाय वैष्णवः ।
दाहयेत्सर्ववर्णानां विष्णुसालोक्यसिद्धये ।।

श्री विष्णु भगवान् का एकमात्र दास श्रीवैष्णव, निश्चय रूप से विष्णु की सालोक्य मुक्ति की सिद्धि के लिये अग्नि से ही सम्यक् प्रकार से तपे हुये सुदर्शन चक्र को लेकर ब्राह्मण आदि सब वर्णों को अंकित करे ।

दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ।
सव्ये तु शंखं बिभृयादिति वेदविदो विदुः ।।

परन्तु, ब्राह्मण निश्चय रूप से दाहिनी भुजा में सुदर्शन चक्र को धारण करे बायीं भुजा में शंख को धारण करे—ऐसा वेदों के जानने वाले जानते हैं ।

चक्राङ्किताय विप्राय ह्यभुक्त्वान्नं ददाति यः ।
तदन्नं मेरुतुल्यं स्यादश्नुते दिवि देववत् ।।

जो निश्चय रूप से चक्राङ्कित विप्र को आप न खाकर अन्न को देता है, वह अन्न सुमेरु पर्वत के समान हो जाता है और स्वर्ग में देवता के समान सुखों को पाता है ।

पद्म पुराण में लिखा है—

अङ्कयेत्तप्तचक्राद्यैरात्मनो बाहुमूलयोः ।
कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिषु च सर्वशः ।।

अपनी दोनों बाहों के मूल में और स्त्री-सन्तान-नौकरों को एवं सभी पशु आदिकों को तप्त चक्र आदिकों से अङ्कित करे ।

स्कन्द पुराण के नारायण-ब्रह्मा संवाद में कहा है—

चक्राङ्कितभुजास्सर्वे प्रह्लादेन ध्रुवेण च ।
बिभीषणेन बलिना रुक्मांगदशुकेन च ।।
मांधात्रा ह्यम्बरीषेण मार्कण्डेयमुखैर्बुधैः ।
शंखादिचिह्नितं सर्वैर्देहं कृत्वा च पुत्रक ।।

और हे पुत्र ! प्रह्लाद और ध्रुव, विभीषण, बलि, रुक्माङ्गद तथा शुकदेव, मांधाता एवं अम्बरीष, मार्कण्डेय प्रमुख सब ज्ञानी लोगों के साथ शंख आदिकों से चिह्नित देह को करके सब चक्राङ्कित भुज वाले थे ।

'विष्णु रहस्य' में लिखा है—

वैष्णवा मुनयस्सर्वे विष्णुचक्रेण मुद्रिताः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापातकनाशनम् ॥

विष्णु के चक्र से मुद्रित अर्थात् चिह्नित सब मुनि लोग श्रीवैष्णव हैं; उनके दर्शनमात्र से बड़े-बड़े पातकों का नाश हो जाता है ।

अतिपापप्रसक्तोऽपि विष्णुचक्राङ्कितस्य तु ।
पादोदकं पिबेद्यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अत्यन्त पापों में आसक्त रहा हुआ भी जो, विष्णु के चक्र से अङ्कित मनुष्य के चरणोदक को पान करे तो, सब पापों से छूट जाता है ।

'हारीत स्मृति' में लिखा है—

चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम् ।
पीत्वा पातकसाहस्रैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥

सुदर्शन चक्र से चिह्नित विप्र अर्थात् ब्राह्मण के पाँवों के धोये हुये जल को पीकर हजारों पापों से छूट जाता है; इसमें सन्देह नहीं है ।

यस्मिंस्तीर्थे कृतस्नाना वैष्णवाश्चक्रलांछिताः ।
तस्मिन्स्नानं प्रकुर्वीत विष्णुसालोक्यमाप्नुयात् ॥

चक्र से चिह्नित वैष्णव लोग जिस तीर्थ (घाट) में स्नान किये हुये होते हैं, उसमें स्नान करे तो, विष्णु के सालोक्य नामक मुक्ति को पायेगा ।

चक्राङ्कितस्य सामीप्यं तपः कुर्यात्प्रयत्नतः ।
स्नानं दानं जपो होमस्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥

चक्र से चिह्नित मनुष्य के समीप तप-स्नान-दान-जप-होम प्रयत्नपूर्वक करे तो, वे सब अविनाशी हो जायँगे ।

शरीरं दृश्यते यस्य विष्णुचक्रेण लांछितम् ।
गङ्गाजलामलं मन्ये देहं तत्पापवर्जितम् ॥

जिसका शरीर विष्णु के चक्र से चिह्नित देखा जाता है, उसकी देह को पाप-रहित गङ्गा-जल के समान निर्मल मानता हूँ ।

विष्णुचक्राङ्कितो विप्रो भुञ्जानोऽपि यतस्ततः ।
न लिप्यते स पापेन तमसेव प्रभाकरः ।।

विष्णु भगवान् के चक्र से चिह्नित ब्राह्मण जहाँ-तहाँ भोजन करता हुआ या करने वाला भी सूर्य, अन्धकार से जैसे नहीं लिप्त होता है, तद्वत् वह पाप से नहीं लिप्त होता है ।

चक्राङ्कितभुजं विप्रं यो भूम्यामभिवादयेत् ।
ललाटपांसुसंख्यानि विष्णुलोके महीयते ।।

जो चक्र से चिह्नित भुजा वाले ब्राह्मण को भूमि पर साष्टाङ्ग प्रणाम करे तो, ललाट में लगी हुई धूलि के कणों की संख्याएँ जितनी होवें, उतने वर्षों तक विष्णु लोक में सत्कार पाता है ।

अविद्यो वा सविद्यो वा शंखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृक् ।
नृणां हन्ति समस्ताघं तमस्सूर्योदये यथा ।।

शंख-चक्र-ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला अज्ञानी हो या सज्ञानी हो, सूर्य उदय होने पर जैसे अन्धकार नाश हो जाता है, वैसे ही मनुष्यों के सब पाप नाश हो जाते हैं ।

विष्णुचक्राङ्कितं विप्रमेकरात्रं तु वासयेत् ।
विष्णुलोकनिवासे तु पूज्य एव न संशयः ।।

और विष्णु के चक्र से चिह्नित ब्राह्मण को एक रात भी निवास करते देवे तो, विष्णु लोक में निवास करने पर सत्कार के योग्य निश्चय रूप से होता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

नारद पाञ्चरात्र की विष्वक्सेन संहिता में लिखा है—

शरीरे यस्य कस्यापि दृश्यते वै सुदर्शनम् ।
तस्मै कुर्वीत पक्षीन्द्र नमस्कारान् प्रयत्नतः ।।

हे गरुड़ जी ! जिस किसी के भी शरीर में निश्चय रूप से सुदर्शन चक्र देखा जाता है, उसको प्रयत्नपूर्वक बारम्बार नमस्कार करना चाहिये ।

चक्राङ्किताय विप्राय जलान्नं प्रददाति यः ।
तदन्नं मेरुतुल्य स्यात्तज्जलं चार्णवोपमम् ।।

जो चक्र से चिह्नित ब्राह्मण को अन्न-जल देता है, वह दिया हुआ अन्न सुमेरु पर्वत के समान हो जाता है और वह दिया हुआ जल अमृत के समुद्र के समान देने वाले के लिये हो जाता है ।

अभ्यञ्जनादिभुक्त्यन्तं यः करोति समाहितः ।
चक्राङ्किताय विप्राय विष्णुसालोक्यमाप्नुयात् ।।

जो सम्यक्प्रकार से युक्त चित्त वाला, चक्र से चिह्नित ब्राह्मण को सब प्रका अभ्यञ्जन आदि भोग पर्यन्त समर्पण करता है, वह विष्णु के सालोक्य नामक मुक्ति क पाता है।

महाभारत के मोक्ष धर्म में कहा है—

सगोत्रमपि यश्श्राद्धे चक्राङ्कितभुजं चरेत् ।
रौरवात्कुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ।।

जो श्राद्ध में चक्र से चिह्नित भुजा वाले सगोत्र को भी भोजन कराता है, वह रौरव नामक नरक से वंश (परिवार) को उद्धार करके विष्णु अर्थात् वैकुण्ठ में पूजित होता है।

पद्म पुराण में लिखा है—

कृष्णायुधाङ्कितो मर्त्यो यत्र यत्रावतिष्ठते ।
श्मशानमपि तत्तीर्थं किं पुनः पुण्यभूमयः ।।

श्रीकृष्ण के आयुधों से चिन्हित मनुष्य जहाँ-जहाँ रहते हैं, वह श्मशान भी तीर्थ अर्थात् पवित्र हो जाता है; फिर पवित्र स्थानों के लिये क्या कहना है।

किं करिष्यति लोकेऽस्मिन्प्रयागमरणादिकम् ।
चक्राङ्कितशरीरस्य गृहे मुक्तिः करे स्थिता ।।

इस संसार में प्रयाग में मरण आदि कार्यों को क्यों करेगा ! चक्र से चिन्हित शरीर वाले के घर में मुक्ति हाथ में स्थित है।

यस्यान्तकाले देहे तु लाञ्छनं जायते हरेः ।
दृष्ट्वा तं प्रलयं यान्ति यमेन सह किङ्कराः ।।

और जिसके मरने के समय देह में नारायण का चिन्ह रहता है, यम के साथ किङ्कर अर्थात् सेवक लोग उसे देखकर प्रलय को प्राप्त होते है।

चक्राङ्कितभुजे प्रायस्सम्मानं क्रियते यदि ।
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य नारद ।।

यदि चक्र से चिन्हित भुज वाले मनुष्य को विशेष रूप से सम्मान अर्थात् आदर किया जाता है तो हे नारद ! प्रयाग में जो गति कही गयी है, वह गति उसकी होती है।

चक्राङ्किताय विप्राय कन्यादानं करोति यः ।
परमानन्दमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

जो चक्र से चिन्हित व्यक्ति ब्राह्मण को कन्या का दान करता है, वह उन विष्णु के परम पद (श्रेष्ठ स्थान) रूप सर्वश्रेष्ठ आनन्द को प्राप्त करता है।

विष्णुचक्राङ्कितं दृष्ट्वा योऽभ्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
स्वकुलं स समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥

जो विष्णु के चक्र से चिन्हित मनुष्य को देखकर उठ कर के दोनों हाथों को जोड़ता है, वह अपने कुल अर्थात् वंश को भली-भाँति उद्धार करके विष्णु के लोक (वैकुण्ठ) में सत्कार पाता है।

चक्राङ्कितभुजा ये तु पंक्तिमध्ये तु भुञ्जते ।
सा पंक्तिस्स्वर्गमध्ये च देवपंक्तिषु पूज्यते ॥

और जो चक्र से चिन्हित भुजा वाले, पंक्ति के बीच में ही भोजन करते हैं, वह पंक्ति, स्वर्ग के बीच में निश्चय रूप से देवताओं की पंक्तियों में पूजित होती है।

शंखचक्राङ्कितं विप्रं दृष्ट्वा योह्लादितो भवेत् ।
परमं पदमाप्नोति किं पुनः फलमैहिकम् ॥

जो शंख-चक्र से चिन्हित ब्राह्मण को देखकर आह्लादित अर्थात् आनन्द से युक्त होता है, वह परम पद (वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है; फिर इस संसार के फल को क्या कहना है ?

चक्राङ्कितस्य नामानि योवदेत् भक्तिमान्नरः ।
सर्वपातकनिर्मुक्तस्स याति परमं पदम् ॥

जो भक्ति अर्थात् प्रेम से युक्त मनुष्य, सुदर्शन चक्र से चिन्हित पुरुष के नामों को बोलता है, वह सब पापों से छूटकर परम पद (श्रेष्ठ स्थान महावैकुण्ठ) को जाता है।

विष्णुचक्राङ्कितो विद्वान् यस्मिन्देशे वसेत्सुखम् ।
स देशो मत्प्रियः पुण्यो वैष्णवानामपि प्रियः ॥

विष्णु के चक्र से चिन्हित ज्ञानी पुरुष, जिस देश में सुख पूर्वक वास करता है, वह देश पवित्र है और मेरा प्यारा है एवं वैष्णवों का भी प्यारा है।

भविष्य पुराण में भगवान् का वाक्य है—

यो नरो मम भक्तस्तु दिव्यचिह्नानि धारयेत् ।
श्वपाको वाऽथ गोघ्नो वा मम लोकं स गच्छति ॥

और जो मनुष्य मेरा भक्त होकर अलौकिक तप्त शंख-चक्रादि चिन्ह धारण करवाता है, वह चाण्डाल हो अथवा गो-हत्यारा (कसाई) हो, वह मेरे को जाता है।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

नारायणायुधैर्नित्यं चिह्नितो यस्य विग्रहः।
पापकोटिशतं दग्धं तस्मिन्दृष्टे भवेत्सदा॥

जिसका शरीर नारायण के आयुधों से सदा चिन्हित रहा करता है, उसके दर्शन करने पर सब काल में सौ करोड़ पाप अर्थात् अनन्त पाप भस्म हो जाया करते हैं।

शंखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादि धारयेद् ब्राह्मणस्सदा।
श्राद्धादिसर्वकर्मार्ह इत्युक्तं किमतः परम्॥

ब्राह्मण सब काल में शंख-चक्र-ऊर्ध्व पुण्ड्र आदिकों को धारण करे तो, वह श्राद्ध आदि सब कर्मों के योग्य है—ऐसा कहा गया है। इससे श्रेष्ठ और क्या है।

शिल्प शास्त्र में लिखा है—

भुजे चक्रं द्विजातीनां शिरश्चक्रं तु दैवतम्।
अचक्रद्विजदेवानां पूजा दानं च निष्फलम्॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों के भुज-मूल में चक्र धारण होना चाहिए और देवता के मस्तक पर चक्र होना चाहिए। बिना चक्र के ब्राह्मण और देवताओं की पूजा तथा दान देना निष्फल है।

वाराह पुराण में लिखा है—

चक्राङ्कितभुजा विप्रा यत्र यत्र वसन्ति हि।
यो जानाति तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे॥

चक्र से चिन्हित भुज वाले ब्राह्मण लोग जहाँ-जहाँ निश्चय रूप से वास करते हैं तथा हे पृथ्वी! तीन मेरे वास-स्थान हैं—ऐसा जो जानता है।

विवरण—"तीन मेरे वास-स्थान हैं"—ऐसा उक्त श्लोक में कहा गया है। भगवान् के वे तीन वास-स्थान ये हैं—"तुलसी काननं यत्र यत्र पद्मवनानि च। वसन्ति वैष्णवा यत्र तत्र सन्निहितो हरिः॥" भावार्थ—"जहाँ तुलसी का वन हो, जहाँ पद्म के वन होवें और जहाँ पर वैष्णव लोग वास करते हैं, वहाँ नारायण वास करते हैं।"

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
तत्फलं श्रूयते तस्य मदीयायुधधारणात् ॥

हजारों अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों वाजपेय यज्ञों से जो फल होते हैं, वह फल मेरे आयुधों (शंख-चक्र) के धारण करने से उसको श्रुति कहती है।

निवसन्ति महात्मानो यत्र चैकान्तिनो द्विजाः।
देवता ऋषयो नित्यं तद्देशं पर्युपासते॥

और जहाँ पर एकान्ती शंख-चक्राङ्कित ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य महात्मा लोग निवास करते हैं, उस स्थान को सर्वदा देवता-ऋषि लोग ध्यान किया करते हैं।

यहाँ तक चक्राङ्कन का उत्कर्ष (प्रशंसा) कहा गया। इसके अनन्तर तद्रहितों की निन्दा शास्त्रों के द्वारा दिखाई जाती है। भविष्य पुराण में कहा है—

चक्राङ्कितभुजं दृष्ट्वा यस्तु तं नाभिवादयेत्।
तिर्यग्योनिशतं प्राप्य विष्ठायां जायते कृमिः॥

पुनः जो, चक्र से चिन्हित भुज वाले को देख कर उन्हें नहीं प्रणाम करता है, वह पशु-पक्षी के शरीर को सौ जन्मों तक प्राप्त करके पीछे मैला में कीड़ा होकर जन्म लेता है।

यज्ञो दानं तपो होमो भोजनं पितृतर्पणम्।
चक्रलाञ्छनहीनस्य विप्रस्य विफलं भवेत्॥

चक्र-चिन्ह से रहित ब्राह्मण के यज्ञ-दान-तप-हवन-भोजन पितृ-तर्पण निष्फल हो जाते हैं।

तीर्थस्नानफलं नास्ति भूगोदानफलं तथा।
अवैष्णवस्य विप्रस्य सर्वं शश्वद्विनश्यति॥

अवैष्णव ब्राह्मण के तीर्थ-स्नान का फल तथा भूमि-गोदान का फल नहीं होता है, सब सदा विनाश हो जाया करते हैं।

रूपलावण्यसंयुक्ता महावंशोद्भवा द्विजाः।
अवैष्णवा न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥

रूप और लावण्य अर्थात् गालों पर की लाली से युक्त, श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न ब्राह्मण लोग अवैष्णव हों तो, सुगन्ध-रहित फूलों की भाँति नहीं शोभित होते हैं।

विद्याविनयसंपन्ना विशालकुलसंभवाः।
विष्णुभक्तिविहीना ये चाण्डालसदृशास्स्मृताः॥

ज्ञान और नम्रता से युक्त बड़ों के वंश में उत्पन्न हुए विष्णु भगवान् की भक्ति से रहित जो हैं—चाण्डाल के समान कहे गये हैं।

हरिवंश पुराण में श्री रुद्र जी का वाक्य है—

सर्वभूतदयायुक्तं वैष्णवं द्वेष्टि यो नरः ।
स चाण्डालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत् ।।

जो मनुष्य, सब प्राणियों पर दया से युक्त वैष्णव को दुःख देता है, वह बड़ा पापी चाण्डाल 'रौरव' नामक नरक को जायगा।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
चक्राङ्कितस्य निन्दा च पञ्चैते त्वतिपातकाः ।।

ब्राह्मण की हत्या करना, मदिरा पीना, चोरी करना, गुरु की स्त्री के साथ गमन करना और चक्राङ्कित पुरुष की निन्दा करना—पाँचों ये बड़े पातक कहे गये हैं।

पराशर स्मृति में लिखा है—

विना यज्ञोपवीतेन विना चक्रस्य धारणात् ।
विना द्वयेन वै विप्रश्चाण्डलत्वमवाप्नुयात् ।।

बिना यज्ञोपवीत के, बिना चक्र के धारण करने से और बिना द्वय मन्त्र के ब्राह्मण, निश्चय चाण्डालत्व को प्राप्त करेगा।

शंखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितो ब्राह्मणाधमः ।
स जीवन्नेव चाण्डालस्सर्वधर्मबहिष्कृतः ।।

शंख-चक्र-ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिकों से रहित, ब्राह्मणों में अधम है। वह जीवित रहता हुआ ही चाण्डाल है और सब धर्मों से बहिष्कृत अर्थात् बाहर किया हुआ है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

अचक्रधारिणो विप्रास्सर्वधर्मेषु गर्हिताः ।
अवैष्णवत्वमापन्ना नरकं यान्ति निश्चयम् ।।

नहीं चक्र धारण किये हुए ब्राह्मण सब धर्मों में निन्दित हैं। नहीं वैष्णवत्व अर्थात वैष्णव-धर्म को न प्राप्त हुए निश्चय नरक को जाते हैं।

चक्रचिह्नादिरहितं प्राकृतं कलुषान्वितम् ।
अवैष्णवं तु तं दूराच्छ्वपाकमिव सन्त्यजेत् ।।

परन्तु उस चक्र के चिन्ह आदिकों से रहित, नीच, पाप से युक्त अवैष्णव को। दूर से चाण्डाल की भाँति सम्यक् प्रकार से त्याग देना चाहिए।

पद्म पुराण में लिखा है—

संलापाद्दर्शनाद्दानाद्यजनाद्वन्दनादपि ।
चक्राङ्कितस्य विप्रस्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।

चक्र से चिह्नित ब्राह्मण के दर्शन करने से, बात-चीत करने से; दान देने से, पूजन करने से, प्रणाम करने से भी विष्णु भगवान् के सायुज्य नामक मुक्ति को प्राप्त करेगा ।

तथैव चक्रहीनस्य पूजनाद्वन्दनादपि ।
वैष्णवो निरयं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।।

वैसे ही विष्णु-भक्त वैष्णव, चक्र से रहित के पूजन करने से, प्रणाम करने से भी महाप्रलय तक नरक को प्राप्त करता है ।

अचक्रधारिणं विप्रं श्रुति-स्मृतिसमन्वितम् ।
त्यजेच्चाण्डालभाण्डस्थं तं विप्रञ्चामृतं यथा ।।

वेद-धर्म शास्त्र से युक्त, नहीं चक्र धारण किये हुए ब्राह्मण को, जैसे चाण्डाल के पात्र में रहे हुए अमृत को त्याग देना चाहिए, वैसे ही उस ब्राह्मण को त्याग देना चाहिए ।

नारद पाञ्चरात्र की सनत्कुमार संहिता में लिखा है—

कृष्णायुधाङ्कितो भूत्वा पितृकार्यं करोति यः ।
तत्सर्वं प्रतिगृह्णाति गयायां च गदाधरः ।।

जो श्रीकृष्ण के शंख-चक्र आयुध से चिह्नित होकर पितृ के कार्य को करता है, उन सबको गया में गदाधर भगवान् निश्चय रूप से ग्रहण करते हैं ।

कृष्णमुद्राङ्कितो यस्तु दैवं पित्र्यं करोति यः ।
नित्यं नैमित्तिकं वापि प्रत्यहं चाक्षयं भवेत् ।।

और जो भगवान् श्रीकृष्ण के शंख-चक्र की मुद्रा से अंकित होकर देव-सम्बन्धि और पितृ-सम्बन्धि कर्म को करता है अथवा जो नित्य सन्ध्यावन्दनादि कर्म और नैमित्तिक —भगवान् की सेवा-पूजा आदि कर्म को भी प्रति दिन निश्चय रूप से करता है, तो अविनाशी फल होता है ।

चक्राङ्कितभुजो भुंक्ते यस्यां पंक्तौ द्विजोत्तमः ।
पुनाति सकलां पंक्तिं गङ्गेवोत्तरवाहिनी ।।

चक्राङ्कित भुजावाला ब्राह्मणोत्तम, जिस पंक्ति में भोजन करता है, उत्तर की ओर धारा बहने वाली गङ्गा की भाँति सकल पंक्ति को पवित्र कर देता है ।

श्राद्धकाले प्रणश्यन्ति भीता दानवराक्षसाः।
शंखचक्रगदापद्मं दृष्ट्वा कर्तुश्च विग्रहे।।

और श्राद्ध के समय श्राद्ध करने वाले के शरीर में शंख-चक्र-गदा-पद्म को देखकर भय से डरे हुए दानव-राक्षस लोग अदृश्य हो जाते हैं।

नारदीय पुराण में लिखा है—

श्रीकृष्णशस्त्राङ्कितहीनगात्रश्श्मशानतुल्यः पुरुषोऽथ नारी।
दृष्ट्वा नरस्तं नृपते सवासास्स्नात्वा समर्चेद्धरिमंग नित्यम्।।

हे राजन्! पुरुष अथवा नारी हो, श्रीकृष्ण के शंख-चक्र रूप शस्त्रों के चिह्न से रहित शरीर वाला, श्मशान के समान अपवित्र है। हे मित्र, मनुष्य उसको देखकर वस्त्र-सहित स्नान करके नित्य नारायण को पूजन करे।

चक्रचिह्नविहीनंतु यश्श्राद्धे भोजयिष्यति।
व्यर्थं भवति तत्सर्वं निराशाः पितरो गताः।।

जो चक्र के चिह्न से रहित को श्राद्ध में भोजन करावेगा, उसका भोजन कराना सब व्यर्थ अर्थात् निष्फल हो जाता है और पितर लोग निराश होकर चले जाते हैं।

उत्तर खण्ड पराशर स्मृति में लिखा है—

अचक्रधारिणं विप्रं यश्श्राद्धे भोजयिष्यति।
रेतोमूत्रपुरीषादि पितृभ्यस्स प्रयच्छति।।

जो, श्राद्ध में नहीं चक्र धारण किये हुए ब्राह्मण को भोजन कराता है, वह पितरों को वीर्य-मूत्र-विष्ठा आदि देता है।

तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्द्विजः।
इत्यादिश्रुतिभिः प्रोक्तं विष्णोश्चक्रस्य धारणम्।।

तिस कारण से ब्राह्मण निश्चय रूप से तपाये हुए चक्र को शास्त्र-विधान से धारण करे। इत्यादि श्रुतियों के द्वारा विष्णु के सुदर्शन चक्र के धारण करने को कहा गया है।

तस्माच्चक्रादिसंस्काराः कर्तव्या मुनिसत्तमाः।
चक्रलांछनहीनेन कृतं कर्म च निष्फलम्।।

हे मुनियों में श्रेष्ठ महात्माओं! तिस कारण से चक्र आदि पाँचों संस्कार करने चाहिए। क्योंकि, चक्र-चिह्न से रहित के द्वारा किया हुआ कर्म निष्फल होता है।

स्नात्वा शुभेह्नि पूर्वाह्णे सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ।
स्नातं शिष्यं समाहूय कृतकौतुकमङ्गलम् ।।

शुभ दिन प्रातःकाल में स्नान करके भली-भाँति केशव भगवान् को पूजन करके स्नान किये हुए शिष्य को बुलाकर किये हुए खेल-तमाशा रूप मङ्गल कार्य को करे ।

आचार्यो विधिवत्कुर्याच्चक्रपुण्ड्रादिसत्क्रियः ।
पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य स्वगृह्योक्तविधानतः ।।

गुरु, वैदिक विधि के अनुसार चक्र तथा ऊर्ध्व पुण्ड्र आदि श्रेष्ठ क्रियाओं को अपने गृह्य सूत्र में कहे गये विधान के अनुसार आगे अग्नि को प्रतिष्ठापन करके करे ।

इति श्री नारायणसारसंग्रहे चक्रधारणमाहात्म्यं नाम प्रथमसंस्कारः ।

अनन्तर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण लिखा जाता है—

वेद की कठवल्ली शाखा में ऊर्ध्व पुण्ड्र की विधि वर्णित है; यथाः

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं यन्महतो महान्तम् ।।

जो महात्मा, ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किये हुए तथा चक्र धारण किये हुए स्वर के साथ मन्त्र से सब काल में हृदय में स्थित श्रेष्ठ से श्रेष्ठ जो कि बड़े से बड़े हैं—ऐसे सबसे श्रेष्ठ विष्णु को ध्यान करते हैं ।

महोपनिषत् में लिखा है—

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।
स्मृत्वा विमुच्येत नरस्समस्तैस्संसारपाशैरिह चैव विष्णुः ।।

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया हुआ मनुष्य, सांख्य और योग से जानने के योग्य बड़े नियामक नारायण को स्मरण करके समस्त संसार के दुःख रूप बन्धनों से छूट जायगा और इस लोक में निश्चय रूप से विष्णु-सदृश हो जायगा ।

अथर्वण वेद में लिखा है ।

हरेः पादाकृतिमात्मनो हितं मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति ।
स परस्य प्रियो भवति, स पुण्यवान् भवति, स मुक्तिभाग्भवति ।।

जो, जीव का हित स्वरूप नारायण के चरण की आकृति वाले बीच में छिद्र से युक्त ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करता है, वह परमात्मा का प्यारा होता है, वह पुण्यवान् होता है, वह मुक्ति का भाजन होता है।

पद्म पुराण में लिखा है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि शुभदर्शने।
धारणादेव मुच्येत भवबन्धविमूढधीः॥

हे मङ्गल दर्शन वाली! ऊर्ध्व पुण्ड्र के माहात्म्य को कहूँगा, जिसके धारण करने से ही संसार के पदार्थों में विमोहित बुद्धि वाला संसार के बन्धन से छूट जायगा।

एकान्तिनो महाभागास्सर्वे मम हिते रताः।
सान्तरालं प्रकुर्वीरन्नूर्ध्वपुण्ड्रं पदाकृतिम्॥

बड़े भाग्यशाली एकमात्र जगत्कारण श्रीमन्नारायण के कैङ्कर्य में परायण रहने वाले सब मेरे हित में लगे रहने वाले रिक्त स्थान के सहित नारायण के दोनों चरणों की आकृति वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र को किया करें।

पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयाच्छ्वेतमृत्तिकाम्।
श्रीरङ्गे वृषभाद्रौ च श्रीकूर्मे यादवाचले॥
प्रयागे नारसिंहाद्रौ वाराहे तुलसीवने।
द्वारवत्यां शुभे रम्ये वासुदेवह्रदे तथा॥
सिन्धुतीरे च वल्मीके हरिक्षेत्रे विशेषतः।
विष्णोः पादोदकं यत्र प्रवाहयति नित्यशः॥
गृहीत्वा मृत्तिकां भक्त्या विष्णुपादजलैस्सह।
कृत्वा पुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रों के धारण के लिये श्वेत रंग की मिट्टी को लेवे। श्रीरङ्ग में और वृषभाद्रि अर्थात् श्रीवेङ्कटेश जी में, श्री कूर्म में, यादवाद्रि में, प्रयाग में, नारसिंहाद्रि में, वाराह क्षेत्र में, तुलसी के वन में, सुन्दर रमणीक स्थान द्वारकापुरी में तथा वासुदेव ह्रद में, सिन्धु के तीर में और वल्मीक अर्थात् दीमक के टील्हे में, विशेष रूप से हरि क्षेत्र में और जहाँ पर विष्णु भगवान् का चरणोदक प्रतिदिन बहाया जाता है; विष्णु भगवान के चरणोदक के साथ भक्ति से मिट्टी को लेकर द्वादश अङ्गों में ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करके विष्णु भगवान् की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करे।

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठकूबरे॥

ललाट में केशव भगवान् को ध्यान करना चाहिए; अनन्तर उदर में नारायण को ध्यान करना चाहिए। हृदय में माधव भगवान् को और कण्ठ में गोविन्द भगवान् को ध्यान करे।

विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके॥

और दाहिनी कुक्षि में विष्णु को तथा दाहिनी बाहु में मधुसूदन भगवान् को, दाहिने कन्धे पर त्रिविक्रम भगवान् को एवं बायें पार्श्व (बगल) में वामन भगवान् को ध्यान करे।

श्रीधरं वमबाहौ तु हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च त्रिके दामोदरं न्यसेत्।

परन्तु बायीं बाहु में श्रीधर भगवान् को और बायें कन्धे पर हृषीकेश भगवान् को और पीठ में पद्मनाम भगवान् को तथा कण्ठ के पीछे भाग में दामोदर भगवान् को न्यास (ध्यान) करे।

तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवेति मूर्धनि।
तत्तत्पुण्ड्राणि तन्मूर्तिं ध्यात्वा मन्त्रेण धारयेत्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रों की शेष बची हुई मृतिका के प्रक्षालन किये हुए अर्थात् धोये हुए जल से "ॐ वासुदेवाय नमः"—इस मन्त्र को बोलकर, माथे पर हथेली को पोछ लेवे। उन-उन ऊर्ध्व पुण्ड्रों को और उनमें उपर्युक्त भगवान् की मूर्त्तियों को ध्यान करके मन्त्र के द्वारा धारण करे।

ललाटे भुजयुग्मे तु पृष्ठे वै कण्ठकूबरे।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रञ्च चतुरङ्गुलमायतम्॥

ललाट में और दोनों कन्धों पर, कण्ठ के पीछे भाग में एवं कण्ठ में चार अंगुल लम्बे ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करे।

कुक्षौ तत्पार्श्वयोः प्रोक्तमायतं तु दशाङ्गुलम्।
बाह्वोर्वक्षःस्थले पुण्ड्रमष्टाङ्गुलमुदाहृतम्॥

उस पेट के दोनों पार्श्वों अर्थात् बगलों में कुक्षि की ओर दश अंगुल लम्बे ऊर्ध्व पुण्ड्र कहे गये हैं। दोनों बाहों में और छाती में आठ अंगुल लम्बे ऊर्ध्व पुण्ड्र कहे गये हैं।

एवं द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणस्सततं धरेत्।
अन्तरालेषु सर्वेषु हारिद्रां धारयेच्छ्रियम्॥

ब्राह्मण, इस प्रकार बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों को निरन्तर धारण करे। सब अन्तरालों (छिद्रों) में हल्दी की श्री को धारण करे।

ब्रह्मरात्र में लिखा है—

श्रीप्रणवेन मन्त्रेण मृदा वै मामनुस्मरन्।
ललाटे धारयेन्नित्यं विष्णुसालोक्यमाप्नुयात्॥

श्रीप्रणव 'ॐ' मन्त्र के द्वारा मिट्टी से निश्चित रूप से मेरा ध्यान करता हुआ ललाट में सर्वदा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे तो, विष्णु भगवान् की 'सालोक्य' नामक मुक्ति को प्राप्त करेगा।

यो न धारयते मर्त्यो मामकं चिह्नमीदृशम्।
तं त्यजामि दुरात्मान मदीयाज्ञातिलंघिनम्॥

जो मनुष्य, इस प्रकार मेरे चिन्ह को नहीं धारण करता है, उस मेरी आज्ञा को उल्लंघन करने वाले दुष्ट आत्मा को त्याग देता हूँ—ऐसा भगवद्वाक्य है।

व्यालं दृष्ट्वा यथा लोके दर्दुरा भयकम्पिताः।
ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कितं तद्वत्कम्पन्ते यमकिङ्कराः॥

संसार में जैसे सर्प को देखकर मेंढ़क भय से कम्पित हो जाते हैं; वैसे ही ऊर्ध्वपुण्ड्र से चिह्नित मनुष्य को देखकर यम के किङ्कर लोग काँपते हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥

और जो ऊर्ध्वपुण्ड्र से संयुक्त मनुष्य मर जाता है, वह चाण्डाल भी हो, तो भी विशुद्ध अन्तःकरण वाला है, वह विष्णु लोक में पूजित होता है।

केवलस्योर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणादपि मानवः।
देहजैः पापसंघातैर्मुच्यते नात्र संशयः॥

केवल ऊर्ध्वपुण्ड्र के धारण करने से भी मनुष्य शरीर से उत्पन्न पापों के समूहों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।

स्कन्द पुराण में लिखा है।

चतुरंगुलमूर्ध्वाग्रं द्वयंगुलं विस्तृतं मुदा।
मृदा पुण्ड्रं द्विजः कुर्यात्सान्तरालं मनोहरम्॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य द्विजाति, ललाट में चार अंगुल लम्बे और एक-एक अंगुल के दोनों पार्श्व चौड़े अर्थात् मोटे आनन्द से मिट्टी के द्वारा बीच में छिद्र के सहित मन को हरण करने वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को करे।

द्व्यंगुलं त्र्यंगुलं वापि मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत्।
द्व्यंगुलं पार्श्वमेकं तु ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य लक्षणम्॥

दो अंगुल अथवा तीन अंगुल बीच में छिद्र अर्थात् खाली जगह बनावे और एक पार्श्व दो अंगुल चौड़ा अर्थात् मोटा होवे—यह ऊर्ध्वपुण्ड्र का लक्षण है। (यह दूसरा मत है।)

भारद्वाज संहिता में लिखा है—

आचम्य धारयेत् पुण्ड्रान्मृदा शुभ्रेण पूर्ववत्।
नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्॥

पहले की भाँति आचमन करके श्वेत मिट्टी से ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करे। नाक के मूल से आरम्भ करके केश तक करे।

नासिकात्रितयं भागं नासिकामूलमिष्यते।
हारिद्रेण तु चूर्णेन कुंकुमेन सुगन्धिना॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु लक्ष्मीस्थानं प्रकल्पयेत॥

नाक के तीसरे भाग को नाक का मूल माना जाता है। इसलिये हल्दी के चूर्ण के सुगन्धित कुंकुम के द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में ही लक्ष्मी का स्थान निर्माण करे।

अत्रि स्मृति में कहा है—

ततो दिव्यं च हारिद्रं सामोदं तुलसीदलम्।
मन्त्रेण धारयेच्चूर्णं पुण्ड्रेषु द्वादशेषु च॥

तदनन्तर आनन्द के सहित तुलसी-दल को और दिव्य हल्दी के चूर्ण को मन्त्र से बारहों ऊर्ध्वपुण्ड्रों में धारण करे।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु दिव्यचूर्णं च धारयेत्।
श्रीकरं विजयं पुण्यं सर्वदोषप्रणाशनम्॥

और ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में ही मङ्गल कारक विजय स्वरूप पवित्र सब दोषों के नाश करने वाले दिव्य (अति सुन्दर) हल्दी के चूर्ण को धारण करे।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु रजनीचूर्णमुत्तमम्।
लक्ष्मीरूपधरं नित्यमन्यद् द्रव्यं न धारयेत्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में ही लक्ष्मी के रूप को धारण करने वाले उत्तम हल्दी के चूर्ण को सर्वदा धारण करे; दूसरे द्रव्य को नहीं।

विष्णुरूपेण संस्पृष्टं तच्चूर्णं शिरसा वहेत् ।
तस्याशुभानि नश्यन्ति पुण्यमार्गो भवेन्नरः ।।

विष्णु के रूप अर्थात् मूर्ति से सम्यक्प्रकार से स्पर्श किये हुए उस हल्दी के चूर्ण को मस्तक से धारण करे; उसके अमंगल सब नाश हो जाते हैं और पवित्र मार्ग वाला मनुष्य हो जाता है ।

नारद पाञ्चरात्र की सनत्कुमार संहिता में लिखा है—

ऊर्ध्वपुड्रं मृदा धार्यं सच्छिद्रं सौम्यमेव च ।
तदलंकरणार्थाय हारिद्रां धारयेच्छ्रियम् ।।

छिद्र के सहित और सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र को मिट्टी से ही धारण करना चाहिए । उसके अलंकार के लिये (शोभा के लिये) हल्दी की श्री को धारण करे ।

विलोक्य दर्पणं विद्वानूर्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम् ।
कुर्यान्मङ्गलमाकांक्षन् हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।।

विद्वान्, मङ्गल चाहता हुआ दर्पण में देखकर हल्दी के चूर्ण से संयुक्त मन को हरण करने वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र को करे ।

नारद पाञ्चरात्र में लिखा है—

न सुवर्णादिभिः कुर्यान्न दार्वं बैल्वमेव वा ।
नारिकेलफलस्यैव श्रीचूर्णपात्रमुच्यते ।।

सुवर्ण आदि धातुओं से श्री चूर्ण रखने का पात्र न बनावे, न काठ का पात्र अथवा न बेल का ही पात्र बनावे, नारिकेल के फल का ही श्री चूर्ण का पात्र कहा गया है ।

कृत्वा करण्डं बिल्बस्य फले पक्वे मनोहरे ।
हारिद्रं पूरयेच्चूर्णं धारयेद्विष्णुप्रीतये ।।

बेल की श्रीदानी का पात्र बनाकर मनोहर पके हुए फल में हल्दी के चूर्ण को भर देवे और श्री विष्णु भगवान् की प्रसन्नता के लिये धारण करे ।

विष्णुगात्रात्परिभ्रष्टं तच्चूर्णं तु ललाटके ।
ब्रह्महत्यादिको दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ।।

भगवान् विष्णु के दिव्य मङ्गल विग्रह रूप शरीर से स्पर्श किये हुये उस प्रसादी श्री चूर्ण को ललाट में धारण करे तो, ब्रह्महत्या आदिक पाप, तत्काल ही नाश हो जाता है ।

ऊर्ध्वपुड्रस्य मध्ये तु अन्यद् द्रव्यं न धारयेत् ।
विष्णुबिम्बेन संस्पृष्टं हारिद्रं धारयेद् द्विजः ।।

और द्विज अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तीनों वर्ण, ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में दूसरे द्रव्य को नहीं धारण करे । विष्णु भगवान् की मूर्त्ति से स्पर्श किये हुये हल्दी के चूर्ण को धारण करे ।

हारिद्रेण तु चूर्णेन स्नापिते मधुसूदने ।
ललाटे तं तु यो धृत्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।

एवं हल्दी के चूर्ण रूप कुंकुम से मधु नामक दैत्य को नाश करने वाले भगवान् के स्नान कराने पर जो ललाट में उस श्री चूर्ण को धारण करके रहता है, वह पर-ब्रह्म नारायण के त्रिपाद्विभूति नामक वैकुण्ठ लोक में पूजित होता है ।

अत्रि स्मृति में लिखा है—

देवदेवांगसंस्पृष्टं चूर्णं पात्रे प्रगृह्य च ।
हारिद्रचूर्णं भक्तेभ्यो विप्रादिभ्यः प्रदीयताम् ।।

तथा देवों के देव नारायण के अंगों से स्पर्श किये हुये श्री चूर्ण को पात्र में लेकर ब्राह्मण आदि भक्तों को हल्दी के श्री चूर्ण को दो ।

'विष्णु धर्मोत्तर' नामक पुराण में लिखा है—

अभिषिक्ते तु यच्चूर्णं विष्णुबिम्बे तु यो नरः ।
हरिद्रां धारयेन्नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ।।

जो मनुष्य विष्णु की मूर्त्ति के स्नान कराने पर जिस हल्दी के चूर्ण को सदा धारण करे तो, 'अश्वमेध' नामक यज्ञ के फल को प्राप्त करेगा ।

'ब्रह्मरात्र' नामक ग्रन्थ में लिखा है—

न त्रिपुण्ड्रं द्विजैर्धार्यं पट्टाकारं तथैव च ।
न चान्यदेवताभक्तिरापद्यपि कदाचन ।।

द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) को त्रिपुण्ड्र और उसी प्रकार पट्टाकार वाला (पड़ा) तिलक नहीं धारण करना चाहिये । एवं कभी विपत्ति काल में भी नारायण को छोड़कर दूसरे देवता की भक्ति नहीं करनी चाहिये ।

त्रिपुण्ड्रस्य धरं विप्रं पट्टाकार धृतंतथा ।
श्वपाकमिव पश्येत न संभाष्येत कर्हिचित् ।।

त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले तथा पट्टाकार (पड़ा आकार वाले तिलक को) धारण किये हुये ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति देखना चाहिये; कभी उससे संभाषण अर्थात् बोल-चाल नहीं करनो चाहिये।

त्रिपुण्ड्रं ब्राह्मणो विद्वाँल्लीलयापि न धारयेत्।
त्रिपुण्ड्रधारणाद्विप्रः पतत्येव न संशयः ।।

विद्वान् ब्राह्मण, लोला (खेल) से भी त्रिपुण्ड्र को नहीं धारण करे, त्रिपुण्ड्र धारण करने से ब्राह्मण निश्चय पतित हो जाता है, सन्देह नहीं है।

तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चाण्डालमिव सन्त्यजेत्।
सोऽनर्हस्सर्वकृत्येषुसर्वे लोकेषु गर्हितः ।।

टेढ़े (त्रिपुण्ड्र) धारण करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति त्याग कर देना चाहिये। वह सब कर्मों में अयोग्य है और सकल प्राणियों में निन्दित है।

त्रिपुण्ड्रधारिणो नित्यं भस्मधूलितविग्रहाः।
भविष्यन्तित्रयी बाह्या यथा चामपलाशिनः ।।

त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले और सदा भस्म (राख) से धूसर शरीर वाले तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) से विरुद्ध आचरण वाले होंगे; जैसे वृक्ष के पके हुये पत्ते व्यर्थ होते हैं।

ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं च क्षत्रियस्यार्धचन्द्रकम्।
वैश्यस्य वर्तुलाकारं शूद्रस्यैव त्रिपुण्ड्रकम् ।।

ब्राह्मण का ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक है और क्षत्रिय का आधे चन्द्रमा के समान अर्थात् द्वितीया के चन्द्र के समान तिलक है। वैश्य का गोल आकार विन्दु के समान और शूद्र का तीन रेखा वाला त्रिपुण्ड्र ही तिलक है।

ब्राह्मणानां मृदा प्रोक्तं क्षत्रियाणां तु चन्दनात्।
वैश्यानां बिल्वमूलेन शूद्राणां भस्मनोच्यते ।।

ब्राह्मणों का ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक मिट्टी से लगाने को कहा गया है और क्षत्रियों का आधे चन्द्रमा का आकार वाला तिलक मलयागिरि-चन्दन से, वैश्यों का गोल बिन्दु आकार वाला तिलक बेल के जड़ से तथा शूद्रों का त्रिपुण्ड्र ति भस्म (राख) से लगाने को कहा गया है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन।
धारयेत्क्षत्रियाद्योऽपि विष्णुभक्तो भवेद्यदि ।।

परन्तु, ऊर्ध्वपुण्ड्र सबका है; कभी किसी के लिये मना नहीं है। क्षत्रिय आदि भी उसे धारण करें; यदि वे विष्णु-भक्त (श्रीवैष्णव) होवें।

रुद्राक्षधारिणं विप्रं सदा भस्मानुलेपिनम्।
सकुलं तं त्यजेन्नित्यं सर्वधर्मबहिष्कृतम्॥

सब काल में भस्म से अनुलेपन करने वाले उस रुद्राक्षधारी सब धर्मों से बहिष्कृत ब्राह्मण को परिवार के सहित सदा त्याग देवे।

तिर्यक्पुण्ड्रधरो विप्रः पंक्तिमध्ये स्थितो यदि।
सा पंक्तिर्ब्रह्महत्यानां योजयेन्नात्र संशयः॥

टेढ़े आकार वाले त्रिपुण्ड्र को धारण करने वाला ब्राह्मण, यदि पंक्ति के मध्य में बैठ गया तो, वह पंक्ति, ब्रह्महत्या में युक्त करे इसमें सन्देह नहीं है।

तिर्यक्पुण्ड्रधरो विप्रो यत्र तिष्ठति दुर्मतिः।
तद्देशः पापसंभूतश्श्मशानसदृशो भवेत्॥

त्रिपुण्ड्रधारी मूर्ख ब्राह्मण जहाँ रहता है, वह देश पाप से उत्पन्न श्मशान के समान हो जायगा।

सम्यक्कृत्वा ललाटे तु ह्यूर्ध्वपुण्ड्रं पुनस्स्वयम्।
यश्छिनत्ति त्रिपुण्ड्रेण स पापी श्वपचाधमः॥

जो ललाट में भलीभाँति ऊर्ध्वपुण्ड्र करके फिर आप ही त्रिपुण्ड्र से काटता है, वह पापी चाण्डाल से भी अधम अर्थात् नीच है।

नारद पाञ्चरात्र की विष्वक्सेनसंहिता में लिखा है—

न धारयेज्जटाभारं भस्म चैव न धारयेत्।
लिङ्गानि चिह्नानि सन्त्यजेद्यावदायुषम्॥

जटा के बोझ को नहीं धारण करे और भस्म को भी नहीं धारण करे। वेद विरुद्ध लक्षण वाले चिह्नों को जब तक आयु रहे, तब तक त्याग करे।

तमसा भस्म रजसा गन्धस्सत्त्वेन मृत्तिका।
मृदं यस्तु धरेत्तस्मादेकान्तां सिद्धिमाप्नुयात्॥

तमो गुण से भस्म, रजो गुण से गन्ध (मलयागिरि-चन्दन) और सत्व गुण से मिट्टी है; किन्तु जो मिट्टी को ऊर्ध्वपुण्ड्र रूप से ललाट आदि द्वादश अंगों में धारण करेगा, तिस कारण एकान्त सिद्धि रूप परमधाम वैकुण्ठ को प्राप्त करेगा।

जटिला मुण्डिनश्चैव तिर्यक्पुण्ड्रधरास्तथा।
भविष्यन्ति त्रयीबाह्या मिथ्याज्ञानप्रलापिनः॥

जटा रखाने वाले और शिखारहित मुण्ड मुड़ाने वाले तथा निश्चय रूप से टेढ़े त्रिपुण्ड्र को धारण करने वाले तीनों वेद-विरुद्ध होंगे और मिथ्या ज्ञान के बोलने वाले होंगे।

कपालकेशभस्मास्थिशुक्तिपाषाणधारिणम् ।
त्रिपुण्ड्रधारिणं विप्रं चाण्डालमिव सन्त्यजेत् ।।

कपाल-केश-भस्म (राख)-हड्डी-सीप-पत्थर की माला को धारण करने वाले और त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले ब्राह्मण का चाण्डाल की भाँति त्याग करे।

स्वच्छन्दाःप्रेत वेषाश्च मिथ्यालिङ्गधरास्तथा ।
ब्रह्मकोपाग्निनिर्दग्धा रुद्रभक्ता जटाधराः ।।
अग्निदं गरदं चैव लिंगपाषाणधारिणम् ।
त्रिपुण्ड्रधारिणं विप्रं चाण्डालमिव सन्त्यजेत् ।।

अपने को ईश्वर-अधीन न मानकर स्वतन्त्र मानने वाले और प्रेत के समान वेष वाले तथा शास्त्रीय विधान से रहित झूठे चिह्नों को धारण करने वाले, ब्राह्मण के क्रोध रूप अग्नि से जलने वाले एवं जटा धारण करने वाले रुद्र के भक्त गण हैं; उन लोगों को और आग लगा देने वाले, तथा विष देने वाले, लिंग और पत्थर की माला को धारण करने वाले एवं त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति त्याग देना चाहिये।

वाराह पुराण में लिखा है—

कुलीनो ब्राह्मणो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टघटं यथा ।।

यदि कुलीन विद्वान् ब्राह्मण भस्म धारण करने वाला होवे तो, हे देवि ! जैसे जूठे मदिरा के घट को अशुद्ध जानकर श्रेष्ठ जन दूर से ही त्याग देते हैं, वैसे ही, उसको त्याग देवे।

मत्स्य पुराण में लिखा है—

यो विना चोर्ध्वपुण्ड्रेण यत्कुर्यात्कर्म वैदिकम् ।
निष्फलं तस्य तत्कर्म भस्मन्येवाहुतिर्यथा ।।

और जो ऊर्ध्वपुण्ड्र के बिना जिस वैदिक कर्म को करेगा, उसका वह कर्म, जिस प्रकार भस्म में हवन करना ही निश्चय निष्फल होता है, वैसे ही निष्फल हो जाता है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्म समाचरेत।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं स च गच्छति॥

परन्तु, ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित पुरुष, सन्ध्या कर्म करेगा, उसका सम्पूर्ण फल राक्षसों को प्राप्त हो जायगा और वह नरक को चला जायगा।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुतिनोदितम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥

नित्य कर्म (सन्ध्या वन्दनादि)— नैमित्तिक कर्म (भगवान् के निमित्त जो कुछ कर्म किया जाने वाला)—काम्य कर्म (किसी फल की इच्छा से कर्म किया जाने वाला)— तीन प्रकार के कर्म श्रुति में कहे गये हैं। ऊर्ध्वपुण्ड्र से रहित मनुष्य के सब वे निष्फल अर्थात् व्यर्थ हो जाते हैं।

ब्राह्मणश्श्रोत्रियो विद्वान्भस्मधारी भवेद्यदि।
सजीवन्नेव शूद्रत्वं नरकं चाधिगच्छति॥

यदि वेद-वेदान्त पढ़ा हुआ विद्वान् ब्राह्मण, भस्म धारण करने वाला होवे तो, वह जीवित रहता हुआ ही शूद्रत्व धर्म को प्राप्त होता है और अन्त में नरक को प्राप्त करता है।

रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते।
शूद्राणां च विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन॥

रुद्र की पूजा करना और त्रिपुण्ड्र का धारण करना जहाँ देखा जाता है, शूद्रों की विधि कही गई है; ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य रूप द्विजातियों की कभी नहीं।

तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं पट्टाकारधरं तथा।
श्वपाकमिव पश्येत न संभाष्येत्कदाचन॥

त्रिपुण्ड्र धारण करने वाले तथा पट्टाकार अर्थात् पड़ा आकार वाले तिलक को धारण करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति देखना चाहिये, कभी उससे संभाषण नहीं करना चाहिये।

ब्राह्मणानां मृदा धार्या न भस्म न च चन्दनम्।
ब्राह्मणानां मृदैवोक्ता न भस्म न च चन्दनम्॥

ब्राह्मणों को मिट्टी से तिलक धारण करना चाहिये, न भस्म और न चन्दन (मलयागिरि) लगाना चाहिये। ब्राह्मणों को मिट्टी से ही कहा गया है, न भस्म और न मलयागिरि चन्दन कहा गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है—

शैवस्य च सदा भस्म न च मृन्न च चन्दनम् ।
ब्राह्मणानां मृदैवोक्ता न भस्म न च चन्दनम् ।।

और शिव-भक्त का सदा भस्म विधान है, न तो मिट्टी और न मलयागिरि चन्दन है। ब्राह्मणों के लिये मिट्टी ही तिलक के निमित्त कही गई है; न भस्म और न मलयागिरि-चन्दन कहा गया है ।

पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है—

वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घं तनूदरम् ।
वक्रं विरूपं बद्धाग्रं छिन्नमूलं पदच्युतम् ।।
अशुभ्रं रूक्षमारक्तं तथानंगुलिकल्पितम् ।
विगन्धं चाप्यसंख्यं च पुण्ड्रमाहुस्त्वनर्थकम् ।।

गोल आकार वाला, तिरछा, छिद्र रहित, छोटा, बहुत लम्बा, थोड़ा विस्तार वाला, टेढ़ा, विरुद्ध रूप वाला, अग्र भाग अर्थात् ऊपर का भाग बँधा हुआ यानी मिला हुआ, कटा हुआ मूल वाला, स्थान-रहित (तिलक करने के स्थान से अलग), सुन्दरता से रहित, रूखा, लाल रंग तीनों रेखा वाला तथा अँगुली से नहीं बनाया हुआ, विरुद्ध गन्ध वाला और शास्त्रोक्त गिनती से रहित तिलक को अनर्थकारक कहते हैं ।

शान्तिदाऽनामिका प्रोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ।।

अनामिका अंगुली, ऊर्ध्वपुण्ड्र करने के लिए शान्ति देने वाली कही गई है। मध्यमा आयु बनाने वाली होगी। अंगूठा, पुष्टि देने वाला कहा गया है और तर्जनी मोक्ष देने वाली है।

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।
स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह विष्णुं व्यपोहति ।।

जो ब्राह्मणाधम, ऊर्ध्वपुण्ड्र को मध्य में रिक्त स्थान के बिना करे तो, वह निश्चय वहाँ लक्ष्मी के सहित स्थित रहे हुये विष्णु को नाश करता है अर्थात् अपने से अलग करता है।

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः ।।

और जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य रूप द्विजों में नीच लोग बीच में खाली जगह के बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को करते हैं, उनके ललाट में निरन्तर कुत्ते का पैर रहता है, इसमें सन्देह नहीं है।

तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महाछिद्रं शुभान्वितम् ।
धारयेत् ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये ।।

तिस हेतु से ब्राह्मण, नारायण की सालोक्य मुक्ति की सिद्धि के लिए सदा छिद्र-युक्त सौंदर्यशाली बीच में बड़े छिद्र वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे ।

मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै हरिमन्दिरम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ।।
एकान्तिनो महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ।।

सकल प्राणियों की भलाई में लगे हुये बड़े भाग्यशाली एकान्ती अर्थात् एक-मात्र श्रीमन्नारायण के दास लोग, बीच में छिद्र से युक्त उन्हीं नारायण के मन्दिर स्वरूप, सरल, सुन्दर, अत्यन्त मन को हरण करने वाले, सुन्दर युगल पार्श्व वाले, मध्य में रिक्त स्थान के सहित नारायण के चरणों की आकृति वाले तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र को करते हैं ।

तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं दण्डाकारं सुशोभनम् ।
विप्राणां सततं धार्यं स्त्रीणां च शुभदर्शने ।।

तिस कारण सुन्दर शोभायमान दण्ड आकार वाले छिद्र युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को ब्राह्मणों को निरन्तर धारण करना चाहिये और हे मङ्गल दर्शन वाली ! स्त्रियों को भी धारण करना चाहिये ।

एवं द्वादश पुण्ड्राणि ब्राह्मणस्सततं धरेत् ।
अन्तरालेषु सर्वेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ।।

इस प्रकार ब्राह्मण, बारह ऊर्ध्वपुण्ड्रों को निरन्तर धारण करे और मध्य के सभी खाली जगहों में हल्दी की श्री को धारण करे ।

चत्वारि भूभृतां प्रोक्तं पुण्ड्राणि द्वे विशांपतेः ।
एकपुण्ड्रं तु नारीणां शूद्राणां तु विधीयते ।।

राजाओं अर्थात् क्षत्रियों के लिए चार ऊर्ध्वपुण्ड्र, वैश्यों के पति के लिए दो और स्त्रियों के लिए एवं शूद्रों के लिये एक पुण्ड्र (तिलक) विधान किया गया है ।

ललाटे हृदि बाह्वोश्च चतुः पुण्ड्राणि धारयेत् ।
ललाटे हृदये द्वे तु भाले त्वेकं विधीयते ।।

क्षत्रिय, ललाट में, हृदय में और दोनों बाहों में चार ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करे और वैश्य, ललाट में तथा हृदय में दो ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। परन्तु, स्त्री-शूद्र को ललाट में केवल एक ऊर्ध्वपुण्ड्र विधान किया गया है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं ललाटे तु सर्वेषां प्रथमं स्मृतम्।
मूर्तयो वासुदेवाद्याश्चतुःपुण्ड्रेषु धारयेत्॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र, ललाट में तो सबके लिए कहा जा चुका है; क्षत्रिय चारों ऊर्ध्व-पुण्ड्रों में वासुदेव आदि (वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध) मूर्तियों को मानसिक रूप से धारण करे।

विवरण—उक्त श्लोक में "मूर्तयो वासुदेवाद्याः"—यह छान्दस् प्रयोग है; इसलिये द्वितीया के अर्थ में प्रथमा का प्रयोग है। उपर्युक्त श्लोक में चार ऊर्ध्वपुण्ड्रों में 'वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध' चारों को क्रमशः धारण करने को कहा गया है। इसका तात्पर्य है—"ॐ वासुदेवाय नमः" कहकर क्षत्रिय ललाट में, "ॐ संक-र्षणाय नमः" कहकर हृदय में "ॐ प्रम्द्युम्नाय नमः" कहकर दाहिनो बाँह में और "ॐ अनिरुद्धाय नमः" बोलकर बायीं बाहु में धारण करे।

द्वयोर्गोविन्दकृष्णौ तु एकं नारायणं धरेत्।
एवं पुण्ड्रविधिः प्रोक्तः सर्वेषां गिरिजे मया॥

वैश्य, दोनों ऊर्ध्वपुण्ड्रों में गोविन्द-कृष्ण को अर्थात् ललाट में "ॐ गोविन्दाय नमः" और कण्ठ के पीछे त्रिक् स्थान में "ॐ कृष्णाय नमः" बोलकर धारण करे तथा स्त्री-शूद्र, कवल ललाट में एक नारायण को "ॐ नारायणाय नमः" कहकर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें। हे पार्वती! मैंने इस प्रकार सबके लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि कही है।

इति नारायणसारसंग्रहे ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणं नाम द्वितीयः संस्कारः॥२॥

अथ तृतीयो नामसंस्कारः

पाराशर स्मृति में लिखा है—

नाम-कर्म प्रवक्ष्यामि पापनाशनमुत्तमम् ।
चक्रादिधारणं यत्र तत्र वै नामकर्म च ।।

उत्तम और पापों का नाश करने वाला नाम तथा कर्म को कहूँगा; जिसमें चक्रादिकों का धारण पाया जाता है, उसी में नाम और कर्म होते हैं ।

नामधेयं विधानाच्च वैष्णवं पापनाशनम् ।
मूर्तयः केशवाद्याश्च तथा संकर्षणादयः ।।
मत्स्यकूर्मादयो व्यूहा विभवाश्च हरेस्तथा ।
तेषामन्यतरं नाम तत्र दद्याच्छुभाह्वयम् ।।

शास्त्र-विधान रूप से और पापों का नाश करने वाला विष्णु सम्बन्धि नाम रखना चाहिये । केशव आदि और वैसे ही संकर्षण आदि व्यूह स्वरूप और उसी प्रकार नारायण के विभव रूप मच्छ-कच्छप आदि मूर्तियाँ हैं; उनमें शुभ पुकारा जाने वाला काई एक नाम उस श्री वैष्णव के विषय में प्रदान करे ।

नाम चैत्र सदासत्वं मुख्यमेव तदुच्यते ।
विनाकृतश्चेद्विफलं श्रेयस्तस्य महामुने ।।

और उन श्री विष्णु भगवान् का दासत्व के सहित नाम ही मुख्य अर्थात् प्रधान कहा गया है । हे महामुने ! उसका कल्याण विफल हो जायगा; यदि भगवद्-दासत्व के बिना नामकरण किया गया ।

योजयेन्नाम दास्यान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ।।

भगवान् का नाम पहले हो जिसके—ऐसे दासत्व अन्त वाले नाम को युक्त करे अर्थात् "नारायण दास-राम दास-कृष्ण दास" आदि नाम रक्खे; उससे पाप सब नाश हो जाते हैं और मनुष्य पुण्य का भागी होता है ।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

न दासा वासुदेवस्य सर्वलोकेश्वरस्य ये ।
तेषां हि नरके वासः कल्पायुतशतैरपि ।।

जो सब लोकों के ईश्वर वासुदेव के दास नाम वाले नहीं होते, उनका निश्चय ब्रह्मा के दस लाख दिनों तक नरक में वास होता है।

अन्यत्र भी लिखा है—

स्वोज्जीवनेच्छा यदि ते स्वसत्तायां स्पृहा यदि।
आत्मदास्यं हरेस्स्वाम्यं स्वभावं च सदा स्मर॥

यदि तेरी अपने उद्धार की इच्छा हो और यदि अपने जीव-स्वरूप के अस्तित्व में अर्थात् रहने में इच्छा हो तो, अपने दासत्व और नारायण के स्वामित्व स्वभाव को सब काल में स्मरण कर।

नारद पाञ्चरात्र में लिखा है—

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानादशुभं यत्कृतं मया।
क्षन्तुमर्हसि देवेश दास्येन च गृहाण माम्॥

मैंने अज्ञान से अथवा ज्ञान से जो अशुभ कर्म किया है, हे देवों के स्वामिन्! मुझको क्षमा करने के योग्य हो और दासत्व रूप से मुझको ग्रहण करो।

न जाने कर्म यत्किञ्चिन्नापि लौकिकवैदिकम्।
न निषेधविधिं विष्णो! तव दासोऽस्मि केवलम्॥

हे सर्व व्यापक विष्णो! जो कुछ भी लौकिक-वैदिक कर्म है, उसे नहीं जानता हूँ और न तो निषेध-विधि को जानता हूँ, केवल तुम्हारा दास हूँ।

श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में दुर्वासा का वाक्य है—

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥

पुरुष, जिन नारायण के नाम के श्रवणमात्र से पाप-रहित हो जाता है, उनके चरणोदक की प्राप्ति से दासों के लिये क्या शेष रह जाता है।

तथा सोऽहं परित्यज्य दासोऽहं यो वदेत्सदा।
वैष्णवस्य जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम्॥

तथा जो, "वह मैं हूँ"—इस भाव को परित्याग करके "मैं दास हूँ"—ऐसा सब काल में बोलता है, वह संसार में पूजा करने के योग्य वैष्णव श्री विष्णु के श्रेष्ठ स्थान (त्रिपाद् विभूति महा वैकुण्ठ) को जाता है।

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्लक्ष्मीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

मैं न ब्राह्मण हूँ और न क्षत्रिय हूँ एवं न वैश्य तथा न शूद्र हूँ; अथवा न कोई वर्ण वाला हूँ और न गृहस्थ, न वानप्रस्थ या सन्यासी हूँ। किन्तु, अत्यन्त रूप से उन्नत् होते हुए सम्पूर्ण परम आनन्द से भरे अमृत-सागर स्वरूप लक्ष्मी के भर्ता के चरण कमलों के दासों के दास का दास हूँ।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

दासभूतास्स्वतस्सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः ।
नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे च विद्यते ।।

क्योंकि, सब जीव परमात्मा के स्वतः दास स्वरूप हैं; उनके संसार में बंधे रहने पर अथवा संसार-बन्धन से छूट जाने पर अन्य प्रकार लक्षण नहीं रहता है।

वैसा ही अन्यत्र भी लिखा है—

अहमस्मि नारायणदासदासो दासस्य दासस्य च दासदासः ।
अन्येभ्य ईशा जगतो नराणां तस्मादहं धन्यतरोऽस्मि लोके ।।

मैं जीव, नारायण के दासों का दास हूँ और उस दास के दास का भी दासों का दास हूँ जो नारायण के दास नहीं हैं—ऐसे दूसरों से मैं संसार के मनुष्यों का स्वामी हूँ, तिस हेतु से मैं संसार में भाग्यवानों में श्रेष्ठ हूँ।

मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे मत्प्रार्थनीय मदनुग्रह एष एव ।
त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्यभृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ।।

हे मधुकैटभ के शत्रु ! मेरे जन्म का यह फल हो एवं मुझसे प्रार्थना करने के योग्य मुझ पर अनुग्रह यही होवे कि हे सकल प्राणियों के स्वामिन् ! तुम्हारे दासों के दास के किङ्कर के दासों के दास के दास का दास हूँ—इस प्रकार मुझको स्मरण करो।

त्रिपाद्विभूति महा वैकुण्ठ परम पद में भी भगवान् के नित्य-मुक्त पार्षद्गण अपनी इच्छा से अनेक शरीर धारण करके भगवान् का नित्य कैङ्कर्य किया करते हैं; यथा—

एकधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ।
अनन्तधा स्वसंकल्पादात्मकिङ्करविग्रहाः ।।

वैकुण्ठ में भगवान् के नित्य-मुक्त पार्षद्गण, अपनी इच्छा से अपने किङ्कर-शरीर एक, दश, सौ, सहस्र और अनन्त प्रकार सेवा करने के उद्देश्य से धारण किया करते हैं।

श्री यामुनाचार्य स्वामी ने भी 'आलवन्दार स्तोत्र' में कहा है; यथा—"दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः ।"

ऋग्यजुस्साम—तीनों वेद मय जो गरुड़ जी, तुम्हारे सेवक-मित्र-सवारी-आसन-ध्वजा-वितान (सामियाना)-पंखा रूप होकर नित्य सेवा वैकुण्ठ में किया करते हैं ।

वादी का कथन है—"दास्य नाम तु शूद्राणां न द्विजानां कदाचन" इति केचिदाहुः, तं प्रति पद्मपुराणे आह—

वादी का कहना है कि—"दासत्व नाम तो शूद्रों के होते हैं; ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों के कभी नहीं"—ऐसा कुछ लोग कहते हैं; उनके प्रति पद्म-पुराण में कहा है-—

ब्रह्मा रुद्रस्तथा चेन्द्रो यमो वरुण एव च ।
नारायणस्य दासास्ते ये चान्येऽण्डस्य मध्यगाः ।

ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्र, यम और वरुण निश्चय नारायण के वे दास हैं और जो लोग दूसरे, ब्रह्माण्ड के बीच में प्राप्त हैं ।

यः परः पुरुषो विष्णुर्नारायण उदाहृतः ।
दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ।।

जो सबसे श्रेष्ठ पुरुष विष्णु, नारायण कहे गये हैं, उनका दास स्वरूप यह ब्रह्मा आदि सारा संसार है ।

सृष्टं पुनस्तथा सर्गे तस्मान्नारायणोऽयुतः ।
तस्य दास्यं चतुर्थ्यन्तं मंत्रे प्रोक्तं तु पार्वति ।।

और हे पार्वति ! फिर उनसे सृष्टि में सकल जगत उत्पन्न हुए हैं; अतएव 'नारायण अच्युत' कहे जाते हैं । उनके मन्त्र "ॐ नमो नारायणाय" में चतुर्थी अन्त वाली दासता कही गई है ।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न व्रतैश्चोपवासकैः ।
प्राप्यते वैष्णवं लोकं बिना दास्येन कुत्रचित् ।।

वेद-यज्ञ-अध्ययनों के द्वारा विष्णु लोक नहीं प्राप्त होता है और न तो व्रतों-उपवास करने वालों के द्वारा कहीं नारायण के दासत्व के बिना श्री विष्णु भगवान् के लोक (श्री वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है ।

तस्माद्दास्यं हरेर्भक्त्या भजेतानन्यमानसाः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं कर्मबन्धविमोचनीम् ।।

तिस हेतु से भक्ति के द्वारा नारायण के दासत्व को स्वीकार करे। भगवान् में एकाग्र मन वाले महात्मा लोग पुण्य-पाप रूप कर्मों के बन्धन स्वरूप संसार से छुड़ाने वाली उत्तम सिद्धि रूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में हनुमान जी का वाक्य है—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥

दुःख देने वाले कर्म से रहित अयोध्या के राजा राम का मै दास हूँ और पवन का पुत्र हनुमान शत्रु-सेनाओं का निश्चय रूप से मारने वाला हूँ।

श्रुति में भी कहा है—"ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा ब्रह्मेमे कितवा उत।" भावार्थ—दास लोग ब्रह्मात्मक हैं, मल्लाह-धीवर ब्रह्मात्मक हैं, पुनः ये सब धूर्त्त लोग ब्रह्मात्मक हैं। तात्पर्य यह कि सभी परब्रह्म नारायण के अधीन रहने वाले दास ही हैं।

हारीत स्मृति में लिखा है—

द्वादशैव तु मासास्तु केशवाद्यैरधिष्ठिताः।
आरभ्य मार्गशीर्षं च यथासंख्यं द्विजोत्तमाः॥

परन्तु हे ब्राह्मणो! बारह महीने ही केशव आदि बारह भगवान् के नामों से अधिष्ठित हैं; इसलिए मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन से आरम्भ करके जैसी संख्या हो, जाननी चाहिये।

यस्मिन्मासे भवेद्यस्तु यन्मूर्ति नामचोच्यते।
नृसिंहरामकृष्णाख्यनामान्यन्यानि कल्पयेत्॥

और जिस महीने में जो होवे तथा जिस मूर्त्ति का नाम कहा जाता है—ऐसे 'नृसिंह-राम-कृष्ण संज्ञक दूसरे नामों को कल्पना करे' अर्थात् विचार करे।

मूल मन्त्र के भाष्य में कहा है—

अकारवाच्यस्य श्रीमन्नारायणस्य मकारवाच्य आत्मा दास इति कथ्यते।

अकार का अर्थ महालक्ष्मी से नित्य युक्त नारायण का मकार का अर्थ जीव, 'दास' ऐसा कहा जाता है।

हारीत स्मृति में कहा है—

गुणयोगेन चान्यानि विष्णुनामानि लौकिके।
विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु नोदितम्॥

और संसार में गुणों के योग से दूसरे विष्णु-सम्बन्धि नाम होते हैं। सब कर्मों में श्रेष्ठ वैष्णव नाम कहा गया है।

परंपरा गुरोर्नाम दद्याच्छिष्यं स तं तु वा।
तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां श्रुतिचोदितम् ॥

शिष्य को या पुत्र को गुरु की परम्परा के द्वारा नाम होवे। तिस हेतु से भगवान् का नाम सबके लिये श्रुतियों से कथित है।

शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः।
नाम दध्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥

वैष्णव, 'मत्स्यदास-कच्छपदास-वराह दास प्रभृति' भगवान् की शक्तिमात्र के आवेश रूप अवतारों के नाम को वर्जित करे अर्थात् त्याग देवे। पापों का नाश करने वाला विष्णु-सम्बन्धि वैष्णव नाम प्रयत्नपूर्वक देवे।

यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः।
अनात्मकस्स विज्ञेयस्सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

परन्तु, यदि जिसे द्विजातिका विष्णु-सम्बन्धि वैष्णव नाम निश्चय रूप से नहीं है; वह मृतक अर्थात् मरा हुआ जानने योग्य है और सब कर्मों से निन्दित है।

नाम दासादि षष्ठ्यन्तं ग्राहयेत्केवलं तु वा।
दद्यात्तन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ॥

षष्ठी विभक्ति का अर्थ अन्त में हो जिसके--ऐसे दास-आदि (प्रपन्न) नाम को ग्रहण करे; यथा—"रामदास, कृष्णप्रपन्न आदि।" अथवा केवल 'नारायण-नृसिंह-वासुदेव आदि' नाम को ही ग्रहण करे। उसका नाम, भगवान् का नाम पूर्व में हो जिसके--ऐसा दास अन्त वाला देवे।

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत् ॥

नारायण की दासता ही सर्वोत्तम धर्म है, नारायण की दासता ही श्रेष्ठ हित है, नारायण की दासता के द्वारा ही दुःख रूप संसार से छुटकारा होगा; नारायण की दासता के बिना नरक को जायगा।

विष्णोर्दास्यपरा भक्तिर्येषां तु न भवेत्क्वचित्।
तेषामेव हि संसृष्टो निरयं ब्रह्मणा नृपः ॥

विष्णु की दासता रूपा उत्तमा भक्ति जिनको कुछ भी नहीं होगी, हे राजन्! निश्चय उन्हीं का नरक रूप जन्म ब्रह्मा के द्वारा है।

नारायणस्य दासा ये न भवन्ति नराधमाः।
जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः॥

जो नीच मनुष्य, नारायण के दास नहीं होते हैं, वे जीते ही चाण्डाल हो जायँगे; इसमें सन्देह नहीं है।

नास्ति चेद्वैष्णवं नाम यस्य वै द्विजसत्तमाः।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! यदि जिसका विष्णु-सम्बन्धि नाम निश्चित रूप से नहीं है, वह पाखण्डी है, इस प्रकार जाने के योग्य है और सब कर्मों में निन्दित है।

एवं तृतीयसंस्कारं कृत्वा वै वैष्णवोत्तमाः।
चतुर्थं मंत्रसंस्कारं कुर्वीत द्विजसत्तमाः॥

वैष्णवों में उत्तम और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इस प्रकार तीसरे संस्कार को करके निश्चय चौथे मन्त्र-संस्कार को करें।

विवरण—उपर्युक्त श्लोक में 'कुर्वीत' क्रिया छान्दस प्रयोग होने के कारण बहु वचन अर्थ में एक बचन लिखा है।

इति 'नारायण सार संग्रहे' हिन्दी भाषा टीका संयुक्ते नामसंस्कारो नाम तृतीयसंस्कारः।

अथ चतुर्थः मन्त्र-संस्कारः

हारीत स्मृति में कहा है—

शृणु राजन्मप्रवक्ष्यामि मंत्रयोगमनुत्तमम् ।
यथोक्तं विष्णुना पूर्वं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥

हे राजन् ! सर्वश्रेष्ठ मन्त्र की महिमा को कहूँगा, सुनो ! जैसी सृष्टि के आदि काल में अर्थात् पहले विष्णु ने श्रेष्ठ जीव ब्रह्मा को कहा था ।

सर्वेषामेव मन्त्राणां प्रथमं गुह्यमुत्तमम् ।
मन्त्ररत्नं नृपश्रेष्ठ ! सद्यो मुक्तिफलप्रदम् ॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! सब ही मन्त्रों में पहला, गुप्त, उत्तम मन्त्र-रत्न (श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते नारायणाय नमः) तुरन्त मुक्ति रूप फल का प्रदान करने वाला है ।

सर्वैश्वर्यप्रदं पथ्यं सर्वेषां सर्वकामदम् ।
यस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टो भवेद्धरिः ॥

सब ऐश्वर्यों का प्रदान करने वाला, हितकारक सबों के लिए सब कामनाओं का देने वाला है; जिसके उच्चारण मात्र से नारायण, सन्तुष्ट हो जाते हैं ।

देशकालादिनियममरिमित्रादिशोधनम् ।
स्वरवर्णादिदोषश्च पौरश्चारणिको न तु ॥

इस द्वय मन्त्र में देश-काल आदि के नियम को अर्थात् "पुण्य देश पुण्यकाल-पुण्य (पवित्र) पात्र को ही देना चाहिये, मगध आदि देश, रात्रि आदि काल, शूद्रादि पात्र (अधिकारी) को नहीं देना चाहिये"—ऐसे नियम को और शत्रु-मित्रादि की खोज को अर्थात् "यह मेरा शत्रु है, इसलिए इसको नहीं देना चाहिये; यह मेरा मित्र है, अतः इसी को देना चाहिये" इत्यादि खोज को नहीं किया जाता है । एवं इस द्वय मन्त्र में स्वर-अक्षर आदिकों के उच्चारण का दोष भी नहीं होता है । और "यह पुरवासी है; यह जंगल का निवासी है, अतः इन्हें द्वय मन्त्र का प्रदान नहीं करना चाहिये"—ऐसे विचार नहीं किये जाते हैं ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्स्त्रियश्शूद्रास्तथेतराः ।
तस्याधिकारिणस्सर्वे सर्वशीलगुणा यदि ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य लोग, स्त्रियाँ, शूद्र तथा दूसरे लोग, यदि सब पर दया गुण वाले हों तो, उस द्वय मन्त्र के सब अधिकारी हैं।

अनन्यसाधना ये तु अनन्यशरणास्तथा।
अनन्यभोग्या ये राजंस्त एवास्याधिकारिणः॥

जो लोग, नहीं दूसरे को अर्थात् एक नारायण को मोक्ष का साधन (उपाय) मानने वाले हैं और नारायण को छोड़कर नहीं दूसरे को रक्षक मानने वाले हैं तथा जो लोग, अपने आपको नारायण को छोड़कर नहीं दूसरे के भोग्य मानने वाले हैं, हे राजन्! वे ही लोग, इस द्वय मन्त्र के अधिकारी हैं।

पञ्चसंस्कारसम्पन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः।
भक्त्या परमया विष्णोर्युक्तास्तस्याधिकारिणः॥

पाँचों संस्कारों से सम्पन्न रहे हुये, श्रद्धा वाले, दूसरों के गुणों में दोषारोपण नहीं करने वाले, विष्णु भगवान् की आत्यन्तिक भक्ति से युक्त रहने वाले उस द्वय मन्त्र के अधिकारी हैं।

पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः पदैः षड्भिः समन्वितः।
वाक्यद्वयपरं मन्त्रं ज्ञेयं रत्नमनुत्तमम्॥

पचीस अक्षर वाला मन्त्र (श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते नारायणाय नमः), छः पदों से युक्त (१—श्रीमन्नारायण चरणौ, २—शरणं, ३—प्रपद्ये, ४—श्रीमते, ५—नारायणाय, ६—नमः), श्रेष्ठ दो वाक्य वाले (१५ अक्षर का पहला वाक्य और १० अक्षर का दूसरा वाक्य), सर्वश्रेष्ठ मन्त्ररत्न को जानना चाहिये।

उसी प्रकार 'पद्म पुराण' के उत्तर खण्ड में ब्रह्मा-नारायण के संवाद में कहा है—

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
लक्ष्मीं च मां सुरेशं च द्वयेन शरणं गतः॥

दुराचारी या सदाचारी हो, मूर्ख अथवा पण्डित हो! लक्ष्मी को और देवों के अधिपति मुझ (नारायण) को द्वय मन्त्र के द्वारा उपाय (रक्षक) स्वीकार जो कर चुका,

मल्लोकमचिरं लब्ध्वा मत्सायुज्यं स गच्छति।
अतिपापप्रसक्तोऽपि श्रीवैकुण्ठं पुरातनम्॥

अत्यन्त पापों में आसक्त रहा हुआ भी वह मनुष्य, मेरे लोक प्राचीन श्री वैकुण्ठ में मेरे समान भोग्य वस्तु को शीघ्र प्राप्त करके अनुभव करता है।

द्वयानुष्ठानमात्रेण नरः शीघ्रं स गच्छति ।
मूर्खो वा धर्मशीलो वा निन्दितो वाऽप्यनिन्दितः ।।

मूर्ख या धर्म स्वभाव वाला हो, निन्दित अथवा अनिन्दित हो, वह मनुष्य, द्वय मन्त्र के अनुष्ठान मात्र से शीघ्र वैकुण्ठ को चला जाता है।

द्वयोच्चारणमात्रेण नरः शीघ्रं स गच्छति ।
नानुकूल्यं न नक्षत्रं न तीर्थादिनिषेवणम् ।।

न अनुकूलता का समय हो और न तो उत्तम नक्षत्र हो तथा न तीर्थादिकों का सेवन करना है, वह मनुष्य, द्वय मन्त्र के उच्चारण मात्र से शीघ्र त्रिपाद्विभूति महा वैकुण्ठ को चला जाता है।

न पुरश्चरणं नित्यं जपं नापेक्षते द्वयम् ।
द्वयेन मन्त्ररत्नेन मत्प्रियेण भजेत्सदा ।।

क्योंकि, यह द्वय मन्त्र, विधिपूर्वक न तो जप की और न नित्य पुरश्चरण नामक कर्म की अपेक्षा करता है। मेरे प्रिय स्वरूप मन्त्रों में रत्न रूप द्वय मन्त्र से सब काल में भजन करे।

ऋष्यादिकं करन्यासमंगन्यासं च वर्जयेत् ।
नारी वा पुरुषो वाऽपि गुरुवन्दनपूर्वकम् ।।

स्त्री हो अथवा पुरुष हो, गुरु को नमस्कारपूर्वक अर्थात् पहले करके ऋषि आदिक, कर न्यास और अंग न्यास को वर्जित करे।

स्त्रीणां च सर्ववर्णानां पुरुषाणां तथा विदुः ।
द्वयेन प्राप्नुयाद्यत्र तद्विष्णोः परमं पदम् ।।

स्त्रियों के लिये और सब वर्ण वाले पुरुषों के लिये वैसा जाने। जहाँ विष्णु भगवान् का परम पद (श्रेष्ठ स्थान त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ) है, उसे द्वय मन्त्र के द्वारा प्राप्त करे।

सर्वमन्त्रफलान्यस्य विज्ञानेन भवन्ति वै ।
अचिरान्मत्प्रसादेन मल्लोकं स च गच्छति ।।

इस द्वय मन्त्र के जानने से निश्चय सब मन्त्रों के फल हो जाते हैं और वह शीघ्र मेरी कृपा से मेरे लोक को चला जाता है।

सर्वपापक्षयकरं सर्वपुण्यविवर्धनम् ।
श्रीकरं लोकवश्यञ्च सद्यः संसारतारकम् ।।

द्वय मन्त्र सब पापों को नाश करने वाला है, सब पुण्यों को बढ़ाने वाला है, लक्ष्मी कारक है, लोगों को वश में करने वाला है और तुरन्त संसार से पार करने वाला है।

मानसं वाचिकं पापं कायिकं च त्रिधाकृतम्।
द्वयस्मरणमात्रेण नाशं याति सुनिश्चितम्॥

मन से किया हुआ, वचन से किया हुआ और शरीर से किया हुआ तीनों प्रकार से किया हुआ पाप, द्वय मन्त्र के स्मरणमात्र से सुनिश्चित नाश को प्राप्त होता है।

संसारार्णवमग्नानां सद्यः संसारतारणम्।
द्वयमेकं तु विप्रेन्द्र! नास्त्यस्य सदृशं भुवि॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! संसार सागर में डूबे हुये मनुष्यों को तुरन्त संसार से पार करने वाला एक द्वय मन्त्र है; क्योंकि इसके समान पृथ्वी पर दूसरा सुलभ मन्त्र नहीं है।

विवरण—उक्त श्लोक में 'द्वयम्' छान्दस् प्रयोग होने के कारण नपुंसक लिंग लिखा गया है। दूसरा कारण भाव में नपुंसक है।

एवं ज्ञात्वा द्विजश्रेष्ठ! द्वयं नित्यमतन्द्रितः।
श्रीमन्नारायणं ध्यात्वा तं भजेत्पुरुषोत्तमम्॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आलस्यरहित मनुष्य, ऐसा जानकर सब काल में उन पुरुषोत्तम लक्ष्मी से नित्य युक्त नारायण को ध्यान करके द्वय मन्त्र को भजे।

द्वयं हि सर्वसुलभमाचारं नह्यपेक्षते।
उपायशून्यतां वीक्ष्य ददाति परमं पदम्॥

क्योंकि, द्वय मन्त्र सबके लिए सुलभ है और आचार (सदाचार) की अपेक्षा नहीं करता है। यह मन्त्र, साधन बुद्धि से रहितता को देखकर परम पद (त्रिपाद्विभूति महा वैकुण्ठ) को देता है।

न्यासो द्वयं प्रपत्तिः स्यात्पर्यायेण निबोध मे।
द्वयोपदेशपूर्वेण सर्वकर्म समाचरेत्॥

न्यास-द्वयं-प्रपत्ति नाम पर्याय (एकार्थक) रूप से होगा—इस प्रकार मुझसे जानो। द्वय मन्त्र का उपदेश पहले होने से सब कर्मों को आचरण करे।

द्वयाधिकारी न भवेत्सर्वमन्त्रेषु नार्हति।
तस्माद् द्वयमधीत्यैव मन्त्रमष्टाक्षरं जपेत्॥

द्वय मन्त्र का अधिकारी न होवे तो, सब मन्त्रों में योग्य नहीं होता है। तिस हेतु से द्वय मन्त्र को अध्ययन करके ही अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) को जपे ।

'पाराशर स्मृति' में लिखा है—

अध्यापयेन्मन्त्ररत्नं सर्षिच्छन्दोऽधि दैवतम् ।
स न्यासं च समुद्रं च साथमध्यापयेद् गुरुः ।।

गुरु, ऋषि-छन्द-अधिदेवता के सहित और न्यास के सहित एवं मुद्रा के सहित द्वय मन्त्र को अध्ययन करावे और अर्थ के सहित अध्ययन करावे ।

उच्चारणान्मनोरस्य सर्वसिद्धिफलं लभेत् ।
अनधीत्य द्वयं मन्त्रं न विप्रो न च वैष्णवः ।।

इस द्वय मन्त्र के उच्चारण करने से अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष रूप सब सिद्धियों के फल को प्राप्त करेगा। द्वय मन्त्र को नहीं अध्ययन गुरु से करके न ब्राह्मण है और न वैष्णव है ।

अचक्रधारिणं विप्रं योऽध्यापयति देशिकः ।
शिष्येण सहितो याति नरकं रौरवं द्विजः ।।

जो आचार्य, बिना चक्र धारण किये हुये ब्राह्मण को द्वय मन्त्र का अध्ययन कराता है, वह ब्राह्मण गुरु, शिष्य के सहित रौरव नरक को जाता है ।

कुलजो वा तपस्वी वा वेदवेदांगपारगः ।
यज्ञदानपरो वाऽपि सर्वतीर्थोपसेवकः ।।
व्रती वा सत्यवादी वा यतिर्वा ज्ञानवानपि ।
द्वयाधिकारी न भवेत्तं प्रयत्नेन वर्जयेत् ।।

श्रेष्ठ कुल में जन्म वाला हो अथवा तपस्वी हो या वेद और वेद के छः अंगों (शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष) का जानने वाला हो अथवा यज्ञ-दान में परायण रहने वाला हो, सब तीर्थों का सेवन करने वाला हो या व्रत करने वाला हो अथवा सत्य बोलने वाला हो किंवा ज्ञानवान् सन्यासी भी हो, यदि द्वय मन्त्र का अधिकारी न होवे तो, उसे प्रयत्नपूर्वक त्याग करे ।

इति नारायणसारसङ्ग्रहे मन्त्रसंस्कारो नाम
चतुर्थः संस्कारः ।

अथ अष्टाक्षरमाहात्म्यम् ।

इसके अनन्तर अष्टाक्षर नारायण मन्त्र का माहात्म्य लिखा जाता है

हारीत स्मृति में लिखा है—

सर्वार्था वेदगर्भस्था वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः ।
अष्टाक्षरस्तु प्रणवे ह्यकारे प्रणवः स्थितः ।।

सब अर्थ (पदार्थ), वेदों के गर्भ में स्थित हैं और चारों वेद, अष्टाक्षर नारायण मन्त्र में स्थित हैं एवं नारायणीय अष्टाक्षर मन्त्र, ओंकार (ॐ) में स्थित है और ओंकार (ॐ), अकार में स्थित है ।

ऐहलौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम् ।
कैवल्यं भगवन्तं च मन्त्रोऽयं साधयिष्यति ।।

यह मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय), इस लोक के ऐश्वर्य (धन-दौलत-स्त्री-पुत्रादि) को, स्वर्ग आदि परलोक के ऐश्वर्य को, केवल अपने जीव-स्वरूप की प्राप्ति-रूप कैवल्य मोक्ष को और भगवान् जगत्कारण श्रीमन्नारायण को प्राप्त करावेगा ।

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ।
श्रीमदष्टाक्षरो मन्त्रो नित्यं प्रियतमो हरेः ।।

यहाँ बहुत कहने से क्या प्रयोजन है ! मनुष्यों के लिये श्रीमद् अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय), धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चतुर्वर्ग स्वरूप सब सिद्धियों का प्रदान करने वाला है तथा नारायण का सर्वदा सबसे अधिक प्रिय है ।

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र कुत्रचित् ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं तस्य विष्णुः प्रसीदति ।।

पवित्रतापूर्वक बैठा हुआ या लेटा हुआ अथवा पवित्र स्थान में जहाँ-कहीं खड़ा हुआ अष्टाक्षर (ॐ नमो नारायणाय) मन्त्र को जप करे तो, उस पर विष्णु प्रसन्न होते हैं ।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
अधीतः सर्ववेदानां यो जपेत्सततं मनुम् ।।

जो निरन्तर नारायण के अष्टाक्षर मूल मन्त्र को जप करता है, उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया, सब यज्ञों में दीक्षित हो चुका और सब वेदों का अध्ययन कर लिया ।

ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा महापापयुतोऽपि वा ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।।

अज्ञान से वेदपाठी ब्राह्मण का वध करने वाला हो, या किये हुये उपकार को नहीं मानने वाला हो अथवा महापापों से युक्त भी हो; अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के जप करने वाले को देखकर पापों से छूट जाता है ।

अष्टाक्षरस्य जप्तारो यथा भागवतोत्तमाः ।
पुनन्ति सकलं लोकं सदेवासुरमानुषम् ।।

जैसे भगवान् के दासों में श्रेष्ठ महात्मा लोग अष्टाक्षर मन्त्र के जप करने वाले देवता-असुर-मनुष्यों के सहित सकल लोक को पवित्र करते हैं ।

अष्टाक्षरस्य जप्तारं प्रणमेद्यस्तु भक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।।

और जो अष्टाक्षर मन्त्र के जप करने वाले को प्रेम से प्रणाम करे तो, सब पापों से रहित होकर विष्णु लोक में पूजित होता है ।

अचिन्त्यं मम माहात्म्यं मनोरस्य जगत्पते ।
न हि वक्तुं मया शक्यं ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ।।

हे संसार के स्वामिन् ! मेरे इस मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के नहीं चिन्तवन करने योग्य माहात्म्य (महत्ता) को ब्रह्मा आदि देवताओं के सहित भी मैं नहीं कह सकने के योग्य हूँ ।

व्यापकानां च सर्वेषां ज्यायानष्टाक्षरो मनुः ।
अष्टाक्षरं प्रजप्त्वा तु साक्षान्नारायणः स्वयम् ।।

सब ही, भगवान् के व्यापक मन्त्रों में अर्थात् नारायण-वासुदेव-विष्णु मन्त्रों में ["ॐ नमो नारायणाय—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—ॐ नमो विष्णवे"—इन तीनों मन्त्रों में] श्रेष्ठ आठ अक्षर वाला "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र है । अष्टाक्षर मन्त्र को निरन्तर जप करके तो प्रत्यक्ष आप नारायण के समान हो जाता है ।

सन्यासं च समुद्रं च सर्षिच्छन्दोऽधि दैवतम् ।
सदीक्षाविधि सध्यानं सार्थं मन्त्रमुदाहृतम् ।।

कर न्यास-अंग न्यास के सहित और चक्र-कमल-सुरभि आदि नाम वाली मुद्राओं के ससित एवं ऋषि-छन्द-अधिदेवता के सहित दीक्षा-विधि के सहित तथा ध्यान के सहित और अर्थ के सहित नारायणीय अष्टाक्षर मन्त्र-जप करने को कहा गया है ।

जपेद्भोग्यतया मन्त्रं सततं वैष्णवोत्तमः ।
न साधनतया जप्यं कर्तव्यं विष्णुतत्परैः ॥

श्रेष्ठ श्री वैष्णव, निरन्तर भोग्य रूप से अर्थात् फल रूप से नारायणीय अष्टाक्षर मन्त्र को जप करे। उन विष्णु के ध्यान में परायण रहने वालों को साधन (उपाय) रूप से मन्त्र का जप नहीं करना चाहिये।

अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
त्रिसन्ध्यासु जपेन्मन्त्रं तदर्थमनुचिन्तयन् ॥

एक हजार आठ बार या एक सौ आठ बार तीनों (प्रातः-मध्याह्न-सायंकाल की) सन्ध्याओं में उस मन्त्र के अर्थ को विचार करता हुआ नारायण मन्त्र को जपे।

अष्टाक्षरस्य जप्तारं शंखचक्रादिधारिणम् ।
योऽत्रमन्येद्विमूढात्मा सद्यश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥

जो अज्ञानी जीव, शंख-चक्र आदि पांचों संस्कारों के धारण करने वाले अष्टाक्षर मन्त्र के जप करने वाले श्री वैष्णव को निरादर करे तो, तुरन्त चाण्डालपने को प्राप्त करेगा।

इति अष्टाक्षर माहात्म्यम्

इसके अनन्तर चरम श्लोक का उत्कर्ष लिखा जाता है—

'विष्णुयामल' नामक श्रेष्ठ सिद्धान्त ग्रन्थ में कहा है—

भारतोदधिं निर्मथ्य गीतां निर्माय तस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥

श्री कृष्ण ने महाभारत रूप समुद्र को मथ कर एवं उसके सार तत्व को निकाल करके गीता को निर्माण करके अर्जुन के मुख में डाल दिया।

भारतामृतसारं च भगवन्मुखनिःसृतम् ।
गीताचरमोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

भगवान् के मुख से निकले हुए तथा महाभारत रूप अमृत का सार तत्व गीता के चरम अर्थात् अन्तिम श्लोक रूप जल को पीकर फिर संसार में जन्म नहीं होता है।

मलनिर्मोचनं पुंसां गङ्गास्नानं दिने दिने ।
चरमश्लोकाम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥

संसार रूप पाप का नाश करने वाला 'सर्वधर्मान् परित्यज्य'–श्रीमद्भगवदगीता के अन्तिम श्लोक रूप जल में स्नान करना है; मनुष्यों को पापों से निर्मुक्त करने वाला है और प्रति दिन गंगा में स्नान करने वाला है।

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वधर्मो दयापरः ॥

सब शास्त्रों में प्रचुर अर्थात् अधिक गीता है, सब देवों में श्रेष्ठ नारायण हैं, सब तीर्थों में श्रेष्ठ गङ्गा है और सब धर्मों में दया श्रेष्ठ है ।

कृष्णवृक्षसमुत्पन्ना गीता चर्म हरीतकी ।
रे जनाः ! किं न खाद्यते कलौ मलविमोचनी ॥

रे मनुष्यों ! श्रीकृष्ण रूप वृक्ष में उत्पन्न हुई गीता के अन्तिम श्लोक स्वरूप हर्रे को जो कि कलि में पाप रूप मल को नाश करने वाली है, उसे क्यों नहीं खाते हो ?

यत्स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृतम् ।
इदं सारमयं प्रोक्तं गुह्यं वेदार्थविस्तरम् ॥

जो कि आप (चरम मन्त्र), पद्मनाभ के मुख कमल से निकला हुआ, गोपनीय, वेदों के अर्थ का विस्तार स्वरूप, सारतत्व से युक्त यह कहा गया है ।

निर्मथ्य सर्वशास्त्राणि कृष्णेन कथितं ध्रुवम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥

सब शास्त्रों को मथ कर श्रीकृष्ण ने सत्य कहा है, पढ़ने से या सुनने से भी विष्णु की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करेगा ।

यः पठेत्सततं भक्त्या गीतासारसमुच्चयम् ।
स नरो मोक्षमाप्नोति सिद्धो भवति नान्यथा ॥

जो निरन्तर प्रीति पूर्वक गीता के मुख्य तत्व से युक्त चरम मन्त्र को पढ़े तो, वह मनुष्य मोक्ष को पाता है और इस लोक में सिद्ध हो जाता है, झूठा नहीं है ।

पादं वाप्यर्धपादं वा श्लोकार्धं श्लोकमेव च ।
यो नित्यं ध्यायते विप्रः स मोक्षमधिगच्छति ॥

जो ब्राह्मण, प्रतिदिन चरम मन्त्र के एक चरण को अथवा आधे चरण को या आधे श्लोक को किंवा एक श्लोक को ही अर्थ के सहित चिन्तन करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है ।

श्लोकोऽयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृतः ।
यः पठेत्परमप्रीत्या स गच्छेद्विष्णुमव्ययम् ॥

यह चरम श्लोक पद्मनाभ स्वरूप श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकला हुआ है, जो बड़ी प्रीति से पढ़ेगा, वह अविनाशी विष्णु को प्राप्त करेगा ।

भगवान का वाक्य है—

यो मां गीतासमूहेन स्तोतुमिच्छति पाण्डव ।।
सोऽहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ।।

हे पाण्डुपुत्र अर्जुन ! जो मुझको सम्पूर्ण गीता के द्वारा स्तुति करने की इच्छा करता है, वह मैं एक चरम श्लोक के द्वारा निश्चय रूप से स्तुति किया जा चुका। सन्देह नहीं है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भी भगवान का वाक्य है—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।

पुनः मेरे सब गोपनीयों में अत्यन्त गोपनीय रूप श्रेष्ठ वचन को सुनो, मेरे तुम स्थिर बुद्धि वाले प्रिय हो; तिस हेतु से तुम्हारे लिये हित वचन को कहूँगा।

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयम् ।।

जो इस अत्यन्त गोपनीय रहस्य को चरम मन्त्र स्वरूप श्लोक को मेरे भक्तों की गोष्ठी में कहेगा, वह मुझमें उत्तम प्रीतिरूपा भक्ति को करके निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त करेगा ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।

जो मनुष्य, श्रद्धा वाला और गुणों में दोष का आरोपण नहीं करने वाला भी इस चरम मन्त्र को सुने तो, वह भी संसार-बन्धन से मुक्त पुरुष भगवद् दासत्व रूप पवित्र कर्म करने वालों के दुःख-रहित लोकों को प्राप्त करेगा।

इत्यादि वाक्य चरम श्लोकपरक हैं।

श्रीमदष्टाक्षरं मन्त्रं मन्त्ररत्नं युगाह्वयम् ।
गीता सुचरमश्लोकं यो जानाति स वैष्णवः ।।

लक्ष्मी से नित्य युक्त अष्टाक्षर मन्त्र को, द्वय नाम वाले मन्त्रों में रत्न-स्वरूप द्वय मन्त्र को, और गीता के सुन्दर अन्तिम श्लोक को जो जानता है, वह वैष्णव (श्री विष्णु का दास) है।

'पाञ्चरात्र' में लिखा है—

न्यासे वा ह्यर्चने वापि मन्त्रमेकान्तिना श्रयेत् ।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत् ।।

एकमात्र श्रीमन्नारायण के ही दास स्वरूप श्रीवैष्णव महात्मा के द्वारा मन्त्र को भगवान् की शरणागति के निमित्त अथवा भगवत्पूजा के निमित्त ग्रहण करे। अवैष्णव के द्वारा उपदेश किये गये मन्त्र के द्वारा नरक को जायगा।

अवैष्णवाहृतं मन्त्रं यः पठेद्वैष्णवो द्विजः।
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥

जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-वैष्णव, अवैष्णव के द्वारा ग्रहण किये गये मन्त्र को पढ़ता है, वह हजारों करोड़ कल्प (ब्रह्मा के दिन) पर्यन्त नरक रूप आग से पकाया जाता है।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

अचक्रधारिणं विप्रं योऽध्यापयति देशिकः।
शिष्येण नरकं याति कल्पकोटिशतं द्विजः ॥

जो ब्राह्मण ज्ञान उपदेश करने वाले गुरु, बिना चक्र धारण किये हुये विप्र को अध्ययन करवाता है, वह शिष्य के सहित सो करोड़ कल्प अर्थात् ब्रह्मा के दिन तक नरक को प्राप्त करता है।

तस्मात्तापादिसंस्कारान् सर्वमन्त्रमनुत्तमम्।
अध्यापयेद् गुरुः सम्यगन्यथा नरकं व्रजेत् ॥

तिस हेतु से गुरु, ताप आदि पाँच संस्कार वालों को सर्वोत्तम सम्पूर्ण मन्त्र को भलीभाँति अध्ययन करवावे; नहीं तो नरक को जायगा।

पद्म पुराण में लिखा हैं—

अवैष्णवोपदिष्टं च पूर्वमन्त्रं परित्यजेत्।
पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद् ग्राहयेन्मनुम् ॥

और अवैष्णव के द्वारा उपदेश किये गये पूर्व मन्त्र को परित्याग कर देवे; फिर भी भलीभाँति विधिपूर्वक श्रीवैष्णव से मन्त्र को ग्रहण करे।

हारीत स्मृति में लिखा है—

अचक्रधारिणं विप्रं मन्त्रमध्यापयेत्तु यः।
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयात ॥

परन्तु, जो बिना चक्र धारण किये हुये ब्राह्मण को मन्त्र का अध्ययन करावेगा, वह रौरव नरक को प्राप्त करके चाण्डाल के शरीर को प्राप्त करेगा।

तस्माद्दीक्षाविधानेन शिष्यं भक्तिसमन्वितम्।
मन्त्रमध्यापयेद्विद्वान् वैष्णवं पापनाशनम् ॥

तिस कारण ज्ञानवान्, दीक्षा के विधान से भक्ति से युक्त शिष्य को पापों का नाश करने वाला विष्णु सम्बन्धि मन्त्र को अध्ययन करावे।

भारद्वाज संहिता में जो कि नारद पाञ्चरात्र की १०८ संहिताओं में से है, कहा है—

न जातु मन्त्रदा नारी न शूद्रो नान्तरोद्भवः ।
नाभिशस्तो न पतितः कामकामोऽप्यकामिनम् ।।

स्त्री, कभी मन्त्र देने वाली न होवे, न शूद्र और न वर्ण संकर मन्त्र देने वाला होवे। न लोकापवाद के निमित्त वृथा दाषी पुरुष मन्त्र देने वाला होवे, न पतित, एवं शब्दादि विषयों की कामना वाला भी नहीं मन्त्र देने वाला होवे तथा व्यर्थ कामना करने वाले को भी गुरु न करे।

सप्तपुरुषविज्ञेये सन्ततैकान्तनिर्मले ।
कुले जातो गुणैर्युक्तो बिप्रः श्रेष्ठतमो गुरुः ।।

पिता-पितामह-प्रपितामह आदि पूर्वज सात पुरुषों से जानने के योग्य, सदा एकमात्र निर्मल (पाप-रहित) कुल में जन्म लिया हुआ उत्तम गुणों से युक्त ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ गुरु कहलाता है।

पद्म पुराण में लिखा है—

सहस्रशाखाध्यायी च सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
कुले महति जातोऽपि न गुरुः स्यादवैष्णवः ।।

सामवेद की सहस्र शाखाओं का अध्ययन करने वाला और सब यज्ञों में दीक्षित तथा बड़े कुल में जन्म लिया हुआ भी अवैष्णव गुरु नहीं होना चाहिये।

यस्तु मन्त्रद्वयं सम्यगध्यापति वैष्णवः ।
स आचार्यस्तु विज्ञेयो भवबन्धविनाशकः ।।

जो वैष्णव, द्वय मन्त्र को भलीभाँति अध्ययन कराता है, वह ही संसार रूप बन्धन का विनाश करने वाला गुरु जानने के योग्य है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

आचार्यं संश्रयेत्पूर्वमनवद्यं च वैष्णवम् ।
शुद्धसत्त्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारकम् ।।

नूतन यज्ञ कर्म को करने वाले अर्थात् भगवान् के आराधन स्वरूप यज्ञ कर्म को करने वाले, रजो गुण-तमो गुण से रहित केवल सात्विक गुणयुक्त और दोष-रहित वैष्णव गुरु से पहले समाश्रित (शिष्य) होवे।

सत्संप्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ।
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नं वेदवेदांगपारगम् ॥
शासितारं सदाचारैः सर्वधर्मविदां वरम् ।
महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेविणम् ॥
आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवः ।
तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः ॥

श्रेष्ठ श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा से युक्त, द्वय मन्त्र के अर्थ का पण्डित, ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न, वेद और वेद के छः अंगों (शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष) को पूर्ण रूप से जानने वाला, श्रेष्ठ आचरणों के द्वारा शासन करने वाला, सब धर्मों के जानने वालों में श्रेष्ठ, श्रेष्ठ आचरणों का सेवन करने वाला, भगवद्दासों में श्रेष्ठ और ब्राह्मण को गुरु बनाना चाहिये । जो वैष्णव, सब शास्त्रों और पुराणों को भलीभाँति देख करके उनके अर्थ को आचरण करे तो, वह आचार्य (गुरु) है— इस प्रकार कहा गया है ।

श्रुति भी कहती है—"आचार्यवान् पुरुषो वेद ।" भावार्थ-गुरुवाला पुरुष परमात्मा को जानता है ।

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।

हे अतिशय प्यारे ! यह ईश्वर-सम्बन्धिनी बुद्धि, तर्क के द्वारा नहीं प्राप्त करने के योग्य है । दूसरे से ही अच्छे ज्ञान वाले के लिये कही हुई (प्राप्त करने योग्य है ।)

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय आत्मनः ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

आत्मा का कल्याण वाला, अपने जीवात्मा के स्वरूप को जानने की इच्छा वाला तिस हेतु से श्रेष्ठ शास्त्र (वेदान्त शास्त्र) में प्रवीण और परब्रह्म में अच्छी तरह से आश्रय वाले गुरु की शरण में जावे ।

कठवल्ली उपनिषद् में लिखा है—

गु शब्दस्त्वन्धकारश्च रु शब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

'गु' शब्द तो अन्धकार है और 'रु' शब्द, उसका नाश करने वाला है । अन्धकार के नाश करने से गुरु— ऐसा कहा जाता है ।

इसके अनन्तर शिष्य का लक्षण कहा जाता है—वह हारीत स्मृति में कहा गया है—

आस्तिक्यमानसं सद्भिरुपेतं धर्मवत्सलम् ।
श्रद्धानं सदाचारं गुरुशुश्रूषतत्परम् ।।

आस्तिक्य मन वाला, उत्तम गुणों से युक्त, धर्म में वत्सल स्वभाव वाला; श्रेष्ठ आचरण में श्रद्धा रखने वाला और गुरु की सेवा में तत्पर रहने वाला—ये शिष्य के लक्षण हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थ के ११ अध्याय में कहा है—

सायं प्रातरुपानीय भिक्षां तस्मै निवेदयेत् ।
यच्चान्यद्प्यनुज्ञातमुपभुञ्जीत संयतः ।

शम-दमादिकों के द्वारा अन्तःकरण को वश में रखने वाला शिष्य, प्रातःकाल और सन्ध्या समय भिक्षा को गुरु के पास लाकर उनको समर्पण करे और जो कुछ दूसरे भी आज्ञापित अन्न को खावे।

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् ।
यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ।।

सर्वदा नीच की भाँति दोनों हाथों को जोड़े हुये सेवा करने वाला शिष्य, सवारी-पलंग-आसन-स्थानों से नहीं बहुत दूर में अर्थात् निकट में रहा हुआ गुरु की उपासना (सेवा) करे।

एवं व्रतो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ।
विद्या समाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रतमखण्डितम् ।।

ऐसा व्रत वाला शिष्य, जब तक विद्या समाप्त की जाती है, तब तक भोगों से रहित हुआ अखण्डित व्रत को धारण करता हुआ गुरु-कुल में वास करे।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।

गुरु को मुझ परमात्मा का स्वरूप जाने, कभी तिरस्कार न करे और न मनुष्य की बुद्धि से सेवा करे; क्योंकि गुरु सब देवों से युक्त हैं।

आदित्य पुराण में लिखा है—

पाद्मे रुष्टे हरस्त्राता हरे रुष्टे हरिस्तथा ।
हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।।

पद्म से उत्पन्न ब्रह्मा के रुष्ट हो जाने पर महादेव रक्षक होते हैं, महादेव के रुष्ट होने पर विष्णु (नारायण) रक्षक होते हैं और नारायण के रुष्ट होने पर गुरु रक्षक होते हैं एवं गुरु के रुष्ट हो जाने पर कोई रक्षक नहीं होता।

आदित्य पुराण के सातवें स्कन्ध में लिखा है—

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
भक्तिर्न स्यात्कृतं तस्य मन्ये कुञ्जरशौचवत् ।।

जिसकी भक्ति, प्रत्यक्ष भगवान् का स्वरूपज्ञान रूप दीप के प्रदान करने वाले गुरु में न होवे तो, उसके किये हुये कर्म को हाथी की लीद के सदृश मानता हूँ ।

अग्नि सम्भव संहिता में लिखा है—

ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः ।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम ।।

जो पापिष्ठ नीच मनुष्य, गुरु की आज्ञा को नहीं करते हैं, हे मुनि श्रेष्ठ ! उनका नरक के कष्ट से छुटकारा नहीं है ।

इसके अनन्तर दीक्षा के काल का निर्णय लिखा जाता है ।

'मन्त्र सार' नामक ग्रन्थ में कहा है—

द्वितीया पञ्चमी वाऽपि षष्ठी वाऽपि विशेषतः ।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ।।

दीक्षा के लिए विशेष रूप से द्वितीया अथवा पञ्चमी या षष्ठी कही गई है; द्वादशी तिथि में भी अथवा त्रयोदशी में ही शिष्य करने के लिए दीक्षा-विधान करना चाहिये ।

वसन्ते दीक्षयेद्विप्रं ग्रीष्मे राजन्यमेव च ।
शारदे समये वैश्यं हेमन्ते शूद्रमेव च ।।

बसन्त ऋतु में ब्राह्मण को दीक्षा संस्कार करे और ग्रीष्म ऋतु में क्षत्रिय को ही शिष्य करे । शरद ऋतु के समय में वैश्य को और हेमन्त ऋतु में शूद्र को ही शिष्य करे ।

स्त्रियश्च वार्षिके काले दीक्षयेद्यत्नतस्तथा ।
दीक्षिताय विशेषेण प्रसीदेन्नान्यथा हरिः ।।

और स्त्रियों को वर्षाकाल में उपाय से दीक्षित करे तथा नारायण, विशेष रूप से दीक्षित मनुष्य के लिये प्रसन्न होंगे, अन्य प्रकार से नहीं ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यः शूद्रोऽथवा पुनः ।
एवं स्त्री च प्रयत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत् ।।

ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय हो, फिर वैश्य अथवा शूद्र हो, या इसी प्रकार स्त्री हो, प्रयत्नपूर्वक गुरु की ही शरणागति करे ।

आर्त्त मुमुक्षुओं के लिए नियम नहीं है; वह 'तत्व सार' नामक ग्रंथ में कहा है—

दुर्लभं सद्गुरूणां तु सत्संगाद्यदुपस्थितम् ।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षा वासरो महान् ।।

परन्तु, श्रेष्ठ गुरुओं के सत्संग से जो दिन उपस्थित हो गया, वह दुर्लभ है। उन गुरु जी की आज्ञा जब प्राप्त हुई, वही बड़ा दीक्षा का दिन है।

ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि ।
आगच्छति गुरुर्दैवात्तदा दीक्षां प्रकारयेत् ।।

ग्राम में अथवा वन में, क्षेत्र में, दिन में या रात में जभी भाग्य से गुरु आ जावें, तभी दीक्षा गुरु से करवा लेवे।

अवश्यं वैष्णवीं दीक्षां प्रविशेत सर्वयत्नतः ।
दीक्षिताय विशेषेण संसिद्धिर्नात्र संशयः ।।

सम्पूर्ण उपाय से अवश्य वैष्णवी दीक्षा में प्रवेश करे, विशेष रूप से दीक्षा ग्रहण किये हुये मनुष्य के लिये नारायण की प्राप्तिरूप मोक्ष की सिद्धि मिल सकती है; इसमें सन्देह नहीं है।

इसके अनन्तर शरणागत का लक्षण लिखा जाता है—

पराशरस्मृति में लिखा है—

माता त्वं सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये !
आश्रयेण स्वेन चेममपराधशतैर्वृतम् ।।

हे सकल प्राणियों के स्वामी नारायण की प्यारी ! तुम सकल प्राणियों की माता हो, इसलिये अपनी शरणागति के द्वारा सैकड़ों अपराधों से युक्त इस दास की रक्षा करें।

नारायण दयासिन्धो वात्सल्यगुणसागर !
त्राह्येनं पापिनं देव कृपया समुपागतम् ।।

हे नारायण ! हे दयासागर ! हे वात्सल्य गुण के सागर ! हे देव ! दया के द्वारा निकट में आये हुये इस पापी की रक्षा करो।

एवं प्रपद्य देवेशमाचार्यं कृपया स्वयम् ।
स्वाचार्यं हृदये ध्यात्वा मन्त्रमध्यापयेत् गुरुः ।।

स्वयं गुरु, इस प्रकार आचार्य (गुरु) स्वरूप देवों के स्वामी नारायण को आश्रयण करके हृदय में अपने गुरु को ध्यान करके दया के द्वारा शिष्य को मन्त्र अध्ययन करावे।

हारीत स्मृति में लिखा है—

एनं रक्ष दयासिंधो बहुजन्मापराधिनम् ।
इत्याचार्येण संदिष्टं प्रपद्येत जनार्दनम् ।।

हे दयासागर ! बहुत जन्मों के अपराधी इस चेतन की रक्षा करो—इस प्रकार गुरु के द्वारा कहे गये शिष्य, आश्रित जनों के दुःखों को नाश करने वाले नारायण की शरणागति करे।

इति प्रपन्नमाचार्यो निवेश्य पुरतो हरेः ।
अध्यापयेत्ततस्तस्मै मन्त्ररत्नं शुभाह्वयम् ।।

गुरु, इस प्रकार शरणागत शिष्य को नारायण के सामने बैठाकर तदनन्तर उस शिष्य को सुन्दर नाम वाले द्वय मन्त्र का अध्ययन करावे।

गद्यत्रय में भी लिखा है—

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बंधून् सखीन् गुरून् ।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।।
सर्वधर्मांश्च संत्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान् ।
लोकविक्रांतचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो ।।

हे संसार में वीर पुरुष ! हे सर्व व्यापक ! पिता को, माता को, स्त्री को, पुत्रों को, बन्धुओं को, मित्रों को, गुरुजनों को, रत्नों को, धन (अन्न आदि)-धान्यों (रुपया-पैसा-जेवर-जट्टा प्रभृति) को, खेतों को और गृहों को एवं सम्पूर्ण साधन रूप धर्मों को तथा अविनाशित्व रूप कैवल्य मोक्ष की सम्पूर्ण कामनाओं को भी अंगों के सहित भलीभाँति त्याग करके तुम्हारे युगल चरणों को उपाय स्वरूप मैंने स्वीकार किया है।

"येन केन प्रकारेण द्वयवक्ता त्वं मदीययैव कृपया……।"

"जिस किसी प्रकार से द्वय मन्त्र का बोलने वाला तू मेरी ही कृपा से मेरी प्राप्ति रूप मोक्ष को प्राप्त करेगा।"—यह भगवान् की प्रतिज्ञा है।

वैसा ही 'नारायण संहिता' में लिखा है—

यथा हि पाणिग्रहणं रक्षाबंधनपूर्वकम् ।
एकस्मिन्नेव युगपन्मुहूर्ते क्रियते रमे ।।
शरणागतिरप्येवं हन्ति तापादिपूर्वकम् ।
एकस्मिन्नेव काले वै कार्या शिष्यस्य देशिकैः ।।

क्योंकि, हे लक्ष्मि ! जैसे एक साथ एक ही मुहूर्त्त में रक्षा बन्धन-पूर्वक अर्थात् पहले करके स्त्री का पाणिग्रहण (पति के द्वारा हाथ पकड़ा जाना) किया जाता है, वैसे ही ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्यों (गुरुओं) के द्वारा शिष्य की एक ही काल में निश्चय रूप से ताप आदि पाँचों संस्कारपूर्वक अर्थात् पहले करके शरणागति भी करवानी चाहिये । ऐसा करने से पाप समूह नाश हो जाता है ।

मंत्ररत्नानुसन्धानपूर्वकं तस्य सादरम् ।
भगवत्पादयोरात्मनिक्षेपस्त्याग उच्यते ।।

द्वय मन्त्र के स्मरणपूर्वक उस शिष्य की आदर के सहित भगवान् के दोनों चरणों में आत्मा को समर्पण कर देना त्याग कहा जाता है ।

मंत्रार्थतत्त्वविदुषं यागतंत्रे नियोजयेत् ।
आचार्याधीनवृत्तिस्तु यावज्जीवं भवेत्तदा ।।

मन्त्रों के अर्थों में तत्त्व (सार) के जानने वाले शिष्य को भगवत्पूजातन्त्र में नियुक्त करे, तब यावज्जीवन गुरु के अधीन में रहने वाला शिष्य होवे ।

यावच्छरीरपातं तु द्वयमावर्तयेन्मनुम् ।

शरीर पात पर्यन्त द्वय मन्त्र को ही आवृत्ति करे अर्थात् जप करे ।

इति श्री नारायणसारसंग्रहे मन्त्रसंस्कारो नाम चतुर्थः संस्कारः ।

———

यागसंस्कारः ।

इसके अनन्तर पाँचवाँ याग संस्कार कहा जाता है—

पाराशर स्मृति में कहा है—

अथ यागविधिं वक्ष्ये संस्कारं तु मनूत्तम ।
अभिवाद्य नमस्कृत्य प्रणिपत्य ततो गुरुम ।

हे मनु श्रेष्ठ ! अनन्तर गुरु को दूर से अभिवादन (साष्टांग) करके, नमस्कार करके और प्रणाम करके तदनन्तर शरणागति विधि के संस्कार को कहूँगा ।

तस्य प्रसादलब्धं हि गृहीत्वा विग्रहं हरेः ।
श्रीभूमिनीलासहितं सायुधं सपरिच्छदम् ।।

क्योंकि, उन गुरु की कृपा से प्राप्त हुई शंख-चक्र-गदा-नन्दक खड्ग-शार्ङ्ग धनुष आदि आयुधों के सहित विष्वक्सेन-कुमुद-कुमुदाक्ष-जय-विजय प्रभृति पार्षदों के सहित एवं श्री देवी-भू देवी-नीला देवी—तीनों पटरानियों के सहित नारायण की मूर्ति को लेकर ।

अर्चयेत् प्रयतो नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
अप्सु व्योम्नि तथार्चायां वह्नौ हृदि तथा गुरौ ।।

शब्दादि सांसारिक विषयों से मन को रोका हुआ आलस्यरहित शिष्य, प्रतिदिन यथासम्भव अर्थात् ठीक समय पर जल में, आकाश में, तथा मन्दिर की अर्चामूर्त्ति में, अग्नि में, हृदय में और गुरु में ध्यानपूर्वक पूजा करे ।

'महोपनिषत्' के अध्याय १ मं० १ में लिखा है—

"एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो नेमे द्यावापृथिवी ।"

संसार के महाप्रलय हो जाने पर एक नारायण ही थे, न ब्रह्मा थे, न महादेव थे और न ये स्वर्ग-पृथिवी ही थीं ।

नारायणोपनिषत् में लिखा है —

नारायणाद् ब्रह्मा जायते ।...नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते ।"

नारायण से ब्रह्मा जन्म लेते हैं × × × नारायण से प्रजापति जन्म लेते हैं ।

वैसा ही स्मृति में लिखा है—

सर्वतस्त्वं जगत्साक्षी चराचरगुरुः पिता।
सर्वलोकेश्वरः साक्षात्सृष्टिस्थित्यन्तकारकः॥

तुम सब ओर से व्याप्त हो और संसार के साक्षी (द्रष्टा) हो, चर-अचर सकल प्राणियों के गुरु और पिता हो, सकल प्राणियों के स्वामी प्रत्यक्ष जगत् की सृष्टि-रक्षा-प्रलय करने वाले हो।

ईश्वरो भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः।
अनन्तः पुरुषः साक्षात्परब्रह्म शिवः प्रभुः॥

भगवान्, विष्णु, ईश्वर, परमात्मा, जगत् के रक्षक, अनन्त, पुरुष, साक्षात् परब्रह्म, मङ्गल स्वरूप, स्वामी हो।

नारायणः सर्वगतः परं ज्योतिः परात्परः।
तस्मात्तु भगवान्विष्णुः परमात्मा स ईश्वरः॥

नारायण, सर्व व्यापक, श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप, श्रेष्ठ ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं; तिस हेतु से ही वह भगवान् विष्णु, परमात्मा ईश्वर हैं।

पद्म पुराण में भी लिखा है—

योऽसौ सर्वगतः श्रीमान्वासुदेवः परात्परः।
अनादिनिधनो विष्णुः स एव परमेश्वरः॥

जो वह सर्व व्यापक, लक्ष्मी से नित्य युक्त, सम्पूर्ण जगत् का निवास स्थान, श्रेष्ठ ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं, वे ही परमेश्वर विष्णु, उत्पत्ति-विनाश से रहित हैं।

शुद्धसत्वमयो योऽसौ कल्याणगुणवान् प्रभुः।
पुण्डरीकेक्षणः श्रीमाञ्छ्रीपतिः पुरुषोत्तमः॥

जो वह कल्याण गुण वाले, स्वामी, कमल के सदृश बड़े-बड़े नेत्र वाले, लक्ष्मी से नित्य युक्त, लक्ष्मी के पति, पुरुषोत्तम हैं।

विप्राणां वेदविदुषामेक एवार्चितः प्रभुः।
विप्राणां नेतरे पूज्या रजस्तमविमोहिताः॥

वेदों के जानने वाले ब्राह्मण के एक प्रभु ही पूजित हैं; रजो गुण और तमोगुण मे विमोहित अर्थात् अज्ञान वाले दूसरे देवगण, ब्राह्मणों के पूजा करने के योग्य नहीं हैं।

महाभारत के अश्वमेध पर्व में भगवान का वचन है—

रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः।
ब्रह्मा समाश्रितो मह्यं नाहं कञ्चिदुपाश्रये॥

देवता लोग, महादेव के अधीन में रहने वाले हैं और रुद्र अर्थात् महादेव, ब्रह्मा के अधीन में रहने वाले हैं एवं ब्रह्मा, मुझ विष्णु के अधीन हैं और मैं किसी के आश्रित नहीं हूँ।

ममाश्रयस्तु नो कश्चित्सर्वेषामाश्रयो ह्यहम्।
इदं रहस्यं कौन्तेय! प्रोक्तवानहमव्ययम्॥

परन्तु, मेरा आधार कोई नहीं है, क्योंकि मैं सबका आधार हूँ। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मैंने अविनाशी इस रहस्य (गुप्त भेद) को कहा है।

नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च सत्तम॥

हे श्रेष्ठ अर्जुन! नारायण से श्रेष्ठ कोई देवता न हुआ और न होगा। यह रहस्य (अति गुप्त कथा), वेदों और पुराणों का है।

सर्वे देवाः सपितरो ब्रह्माद्याश्चाण्डमध्यगाः।
विष्णोः सकाशादुत्पन्ना इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

पितरों के सहित सब देवता लोग और ब्रह्माण्ड के मध्य में प्राप्त ब्रह्मा आदि देवगण, विष्णु से उत्पन्न हुये हैं—इस प्रकार यह वेद की श्रुति कहती है।

नृसिंह पुराण में कहा है—

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे विष्णुमाराध्य ते पुरा।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्य प्रसादतः॥

केशव की कृपा से ब्रह्मा आदि वे सब देवगण, पूर्व काल में विष्णु की आराधना करके अपने-अपने पद को प्राप्त किये हैं।

ये तु सामान्यभावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम्।
ते वै पाखण्डिनो ज्ञेया नरकार्हा नराधमाः॥

परन्तु, जो लोग, साधारण रूप से पुरुषोत्तम (नारायण) को मानते हैं, वे लोग, निश्चय पाखण्डी, नरक के योग्य और मनुष्यों में नीच जानने के योग्य हैं।

श्री विष्णु सहस्र नाम में भी लिखा है—

दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता।
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे॥

जो जगत्कारण नारायण, सकल देवताओं के देवता और सकल प्राणियों के अविनाशी पिता हैं; सृष्टि के आरम्भ में सत्य युग के आने पर जिनसे सकल प्राणीगण उत्पन्न होते हैं।

यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ॥

हे पृथ्वी पते ! और फिर भी युग के नाश हो जाने पर जिन नारायण में सकल प्राणीगण प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं, उन सकल लोकों में प्रधान पुरुष जगन्नाथ के......... ।

श्रीमद्भागवद् गीता में कहा है—

पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ।"

तुम चलने वाले और नहीं चलने वाले समस्त प्राणियों के पिता हो और इस लोक के पूज्य एवं श्रेष्ठ गुरु हो । तुम्हारे समान दूसरा नहीं है तो, अधिक कहाँ से होगा ? तुम तीनों लोकों में भी असदृश सामर्थ्य वाले हो ।

श्रीमद्भागवत में कहा है—

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां गतिः ॥

लक्ष्मी के पति, यज्ञों के पति, प्रजाओं के पति, बुद्धियों के पति, लोकों के पति और पृथ्वी के पति एवं अन्धक-वृष्णि-सात्वतों के पति और गति (उपाय) हो, मुझ पर सज्जनों के रक्षक भगवान् प्रसन्न होवें ।

प्रजापति स्मृति में कहा है—

नारायणं परित्यज्य हृदिस्थं प्रभुमीश्वरम् ।
योऽन्यमर्चयते देवं परबुद्ध्या स पापभाक् ॥

जो, हृदय में रहे हुये हृदयान्तर्यामी स्वामी प्रभु नारायण को परित्याग करके दूसरे देव को परमात्मा की बुद्धि से पूजता है, वह पाप का भागी होता है ।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

नारायणः परं ब्रह्म ब्राह्मणानां हि दैवतम् ।
सोमसूर्यादयो देवाः क्षत्रियाणां विशामपि ॥

परब्रह्म नारायण, ब्राह्मणों के ही देवता है किन्तु, चन्द्र-सूर्य आदि देवगण क्षत्रियों और वैश्यों के भी देवता हैं ।

शूद्रादीनां तु रुद्राद्या अर्चनीयाः प्रकीर्तिताः ॥

परन्तु; शूद्र आदिकों के रुद्र आदि देवता पूजनीय कहे गये हैं ।

महाभारत में कहा है—

ब्रह्माणं शितिकण्ठं च याश्चान्या देवताः स्मृताः ।
प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम् ।।

ज्ञानी जन, ब्रह्मा को और महादेव को एवं जो दूसरे देवता कहे गये हैं, उन्हें इस हेतु से नहीं सेवा करते हैं कि ये सब थोड़ा फल (सांसारिक फल) के देने वाले होते हैं ।

पद्म पुराण में महर्षि भृगु का वचन है—

शुद्धसत्वमयो विष्णुः कल्याणगुणसागरः ।
नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं हरिः ।।

शुद्ध सत्व गुण से युक्त, कल्याण गुणों के सागर विष्णु नारायण परब्रह्म हरि ब्राह्मणों के देवता हैं ।

स एव पूज्यो विप्राणां नेतरः पुरुषर्षभ ।
मोहाद्यः पूजयेदन्यं स पाखण्डी भविष्यति ।।

हे पुरुष श्रेष्ठ ! वे ही नारायण ब्राह्मणों के पूजा करने के योग्य हैं, दूसरा नहीं । जो अज्ञान से दूसरे को पूजेगा, वह पाखण्डी हो जायगा ।

अशुद्धा ब्रह्म रुद्राद्या रजस्तमविमिश्रिताः ।
नान्यः कश्चिन्नराणां वै पूजनीयः कदाचन ।।

क्रमशः रजो गुण और तमो गुण से मिले हुये ब्रह्मा और रुद्र आदि अशुद्ध देव हैं; दूसरा कोई, मनुष्यों के कभी पूजने योग्य ही नहीं हैं ।

नान्यंदेवं निरीक्षेत नान्यं देवं च पूजयेत् ।
न चान्यं प्रणमेद्विप्रो नान्यदायतनं विशेत् ।।

ब्राह्मण, दूसरे देवता को न देखे और न दूसरे देव की पूजा करे तथा न दूसरे को प्रणाम करे न दूसरे देव के मन्दिर में प्रवेश करे ।

वाराह पुराण में कहा है—

यत्सत्वं स हरिर्देवो हरिस्तत्परमं पदम् ।
सत्वं रजस्तमश्चेति तृतीयं चैतदुच्यते ।।

जो सत्व गुण वाले हैं, वह नारायण देव हैं और नारायण ही वह परम पद (सर्वश्रेष्ठ स्थान) हैं । सत्व गुण, रजो गुण और तमो गुण—ये तीनों ही गुण वाले विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, इन नारायण के रूप कहे जाते हैं ।

लिंग पुराण में कहा है—

हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शंकरः स्वयम् ।
सत्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मा सदसन्मयः ॥

रजो गुण से ब्रह्मा, तमो गुण से आप शंकर और सत्व गुण से सबमें व्यापक रहने वाले, सबकी आत्मा, कार्य-कारण से युक्त रहने वाले विष्णु हैं।

सात्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैरेव शंकरः ।
राजसैस्सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैश्च सरस्वती ॥

सात्विक लोग विष्णु की सेवा करते हैं, राजस प्रकृति वाले ब्रह्मा की सेवा करते हैं, और तामसी लोग शंकर की ही सेवा करते हैं तथा सात्विक-राजस-तामस—तीनों गुणों से मिश्रित लोग, सरस्वती की सेवा करते हैं।

बौद्धो रुद्रस्तथा वायुर्दुर्गा गणपभैरवाः ।
यमस्स्कंदो नैऋ‍र्तश्च तामसा देवताः स्मृताः ॥

बौद्ध, रुद्र तथा वायु, दुर्गा, गणेश, भैरव, यम, स्कन्द और नैऋत— तामस देवता कहे गये हैं।

श्रीमद्भागवत में भी कहा है—

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।
स्थित्यादयो हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनो नृणां स्युः ॥

सत्व-रज-तम—ये प्रकृति के गुण हैं, उन तीनों गुणों से युक्त एक श्रेष्ठ पुरुष, इस लोक में इस कार्य-विस्तार के लिये धारण करते हैं। संसार की रक्षा आदि (उत्पत्ति-संहार) करने वाले विष्णु-ब्रह्मा-महादेव—ये नाम वाले हो जाते हैं; उन तीनों में निश्चय रूप से रजो गुण-तमो गुण से रहित केवल शुद्ध सत्व गुण से युक्त शरीर वाले विष्णु से ही मनुष्यों के कल्याण (भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष) होंगे।

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शांता भजंति ह्यनसूयवः ॥

क्योंकि, दूसरों के गुणों में दोषारोपण से रहित संसार से छूटने की इच्छा वाले, भयङ्कर रूप वाले भूतों के पतियों को छोड़कर अनन्तर नारायण की शान्त कलाओं को (अनन्त-गरुड़-विष्वक्सेन प्रभृति नित्य पार्षदों को) भजते हैं।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

श्रीमहाविष्णुमन्येन हीनदेवेन दुर्मतिः ।
साधारणं सकृद् ब्रूते सोऽन्त्यजो नान्त्यजोऽन्त्यजः ॥

दुष्ट बुद्धि वाला, दूसरे नीच देवता के समान श्री महाविष्णु को एक बार भी साधारण कहता है तो, वह चाण्डाल मात्र ही नहीं, प्रत्युत चाण्डाल से चाण्डाल अर्थात् चाण्डालों में भी अति नीच चाण्डाल है।

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यंदेवमुपासते ।
स हेमराशिमुत्सृज्य पांसुराशिं जिघृक्षति ॥

जो वासुदेव को परित्याग करके दूसरे देव की उपासना करता है, वह सुवर्ण की ढेर को छोड़कर धूली की ढेर को लेने की इच्छा करता है ।

पद्म पुराण में लिखा है—

यक्षराक्षसभूतानां कूष्माण्डगणभैरवाः ।
नार्चनीयाः सदा देवि विष्णुलोकमभीप्सुभिः ॥

हे देवि ! निरन्तर विष्णु लोक चाहने वालों को यक्ष-राक्षस-भूत-कूष्माण्ड-भैरवगणों की नहीं पूजा करनी चाहिये ।

रजस्तमोविभूतीनामर्चनं प्रतिषिद्ध्यति ।
रौरवं नरकं यांति यक्षभूतगणार्चनात् ॥

रजो गुण-तमो गुण विभूति (ऐश्वर्य) वालों की पूजा करना सात्विक पुरुषों के लिए निषेध है; यक्ष और भूतगणों की पूजा करने से रौरव नरक को जाते हैं ।

तस्मात्तु सर्वयज्ञस्य भोक्तारं पुरुषोत्तमम् ।
ज्ञात्वा सर्वत्र कुर्वीत नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥

तिस कारण से ही सब यज्ञों के भोक्ता पुरुषोत्तम को जानकर सर्वत्र नित्य-नैमित्तिकी क्रियाओं को करे ।

अब अर्चाप्रकार लिखा जाता है—

जम्बुद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे ।
अर्चायां सन्निधिर्विष्णोर्नेतरेषु कदाचन ॥

बड़े पवित्र जम्बु द्वीप के सुन्दर भारतवर्ष में ही भगवान् की अर्चा (पूजा-मूर्त्ति) में विष्णु की सन्निधि (अभिमत रूप से व्यापकत्व) रहती है, दूसरों में कभी नहीं ।

भारतेऽस्मिन् महावर्षे नित्यं सन्निहितो हरिः ।
सर्वावस्थासु सौलभ्यमर्चायां विन्दते जनैः ॥

इस भारत महावर्ष में सर्वदा निकट में रहे हुये नारायण को अर्चा (पूजा) मूर्त्ति में सब अवस्थाओं में सुलभता को मनुष्य लोग प्राप्त करते हैं ।

तस्माद्वै भारते वर्षे मुनिभिस्त्रिदशैरपि ।
सेव्यते ऋषिभिर्देवि ! तपोयज्ञक्रियादिभिः ॥

हे देवि ! तिस हेतु से भारतवर्ष में ही मुनि लोग, देवता लोग **और ऋषि** लोग भी तप-यज्ञ की क्रियाओं के द्वारा सेवन करते हैं।

ऐन्द्रद्युम्ने तथा कूर्मे सिंहाद्रौ बदरीवने।
कृतशौचे प्रयागे च पौण्ड्रके चैव दण्डके ॥

राजा इन्द्र द्युम्न के द्वारा प्रतिष्ठापित श्री जगन्नाथ धाम में और श्री कूर्म में, सिंहाचल में, बदरी वन में और पवित्र किये गये प्रयाग में, काशीपुरी में तथा दण्डक वन में,

वैकुण्ठाद्रौ पदे चैव श्वेताद्रौ करवीरके।
काञ्च्यामनन्तशयने श्रीरङ्गे गौरवाचले ॥
नारायणाचले सौम्ये वाराहे वामनाश्रमे।
एवमाद्याः स्वयं व्यक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥

वैकुण्ठाद्रि में और वैकुण्ठ स्थान में, श्वेताद्रि में, करवीरक क्षेत्र में, काञ्ची में, अनन्त शयन में, श्रीरङ्ग में, गौरवाचल में, सुन्दर नारायणाचल में, वाराह क्षेत्र में और वामनाश्रम में इत्यादि इस प्रकार सभी कामनाओं के फल प्रदान करने वाले स्वयं व्यक्त भगवान हैं।

अथवा स्थापनं विष्णोः स्वगृहे तद्विशिष्यते।
शिलया दारुलोहाद्यैः कृत्वा प्रतिकृति हरेः ॥

अथवा पत्थर से, काष्ठ से और लोहा आदिकों से नारायण की मूर्ति बनाकर अपने घर में उन विष्णु का स्थापन करना विशेष (श्रेष्ठ) है।

'विष्णु यामल' नामक ग्रन्थ में कहा है—

मृदा च रम्यरत्नेन ताम्रेण रजतेन वा।
कृत्वा दारुमयं बिम्बमर्चयेत्काञ्चनेन वा ॥

मिट्टी के द्वारा या सुन्दर रत्न से, ताँबे से अथवा चाँदी से या सुवर्ण से किंवा काष्ठ की मूर्त्ति बनाकर पूजन करे।

पुण्यं दशगुणं विद्य देतेषामुत्तरं तरम् ।
यस्मिन् सन्निहितो विष्णुः स्वयमेव नृणां विभुः ॥

इस सब द्रव्यों के उत्तर-उत्तर (पीछे-पीछे) दश गुणा पवित्र जाने; जिसमें सर्व व्यापक विष्णु, आप ही मनुष्यों के लिए अभिमतपूर्वक सयुक्त होते हैं।

'हारीत स्मृति' में लिखा है—

शाङ्गी तत्कर्मदक्षश्च प्रतिष्ठां कर्तुमर्हति।
दीक्षितः सकलं कुर्यादेव कर्म ह्यतन्द्रितः ॥

शास्त्रों का जानने वाला और उस मूर्त्ति प्रतिष्ठा कराने के लिये कर्मों में कुशल, प्रतिष्ठा करने के योग्य है। निश्चय आलस्य-रहित ही दीक्षित पुरुष, सम्पूर्ण कर्म को करे।

'पाराशर स्मृति' में लिखा है—

देवतान्तरभक्तो वा समबुद्धिरथापि वा।
नास्तिको वेदहीनो वा न प्रतिष्ठां समाचरेत् ॥

नारायण को छोड़कर दूसरे देवता का भक्त अथवा नारायण के समान अन्य देव का मानने वाला या वेद की निन्दा करने वाला या वेद के ज्ञान से रहित पुरुष, भगवान् की प्रतिष्ठा न करे।

हारीत स्मृति में लिखा है—

अवैष्णवेन विप्रेण स्थापिते मधुसूदने।
तद्राजभूपतिर्वाऽपि विनाशमुपजायते ॥

अवैष्णव ब्राह्मण से स्थापित मधुसूदन के होने पर उस राज्य का राजा निश्चय विनाश को प्राप्त होता है।

वसिष्ठ स्मृति में कहा है—

चक्रादिचिह्नहीनेन स्थापिते सति विग्रहे।
न सान्निध्यं हरिर्याति क्रियाकोटिशतैरपि ॥

चक्र आदिकों के चिह्नों से रहित के द्वारा भगवान् की मूर्त्ति के स्थापित होने पर सौ करोड़ क्रियाओं के द्वारा भी नारायण, सान्निध्य को नहीं प्राप्त करते हैं।

पाञ्चरात्र में लिखा है—

शङ्खचक्राङ्कहीनैश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितैः।
कृतं पूजाप्रतिष्ठादि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

शंख-चक्र के चिह्नों से रहित और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक से रहितों के द्वारा की हुई पूजा-प्रतिष्ठा आदि वे सब निष्फल हो जाते हैं।

अमन्त्रमर्चनं कुर्यादकाले पूजयेद्धरिम्।
ग्रामनाशश्च दुर्भिक्षं राजा राष्ट्रं विनश्यति ॥

बिना मन्त्र के भगवान् की अर्चना करे और बिना समय नारायण की पूजा करे तो, ग्राम का नाश, दुर्भिक्ष और राजा एवं देश का नाश हो जाता है।

अवैष्णवस्थापितानां प्रतिमानां च वन्दनम्।
यः करोति स मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत्॥

जो अवैष्णव के द्वारा स्थापित मूर्तियों को साष्टाङ्ग प्रणाम करता है, वह अज्ञानी जीव रौरव नरक को जायगा।

तस्मादवैष्णवान् विप्रान्न कर्मणि नियोजयेत्।
महाभागवतं तत्र अर्चायां वरयेत् सुधीः॥

तिस हेतु से विद्वान्, अवैष्णव ब्राह्मणों को भगवत्पूजा-प्रतिष्ठा आदि कर्म में नहीं नियुक्त करे। उस पूजा में महा भागवत (उत्तम श्रीवैष्णव) को वरण करे।

अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः।
आकारत्रयसंपन्नास्ते वै भागवतोत्तमाः॥

अपने जीव का स्वरूप, परमात्मा का स्वरूप, पुरुषार्थ स्वरूप (पुरुषों अर्थात् जीवों के द्वारा चाहने योग्य वस्तु का स्वरूप), फल प्राप्ति के साधन (उपाय) का स्वरूप विरोधी स्वरूप—पाँच अर्थों के तत्त्वों को जानने वाले, ताप-पुण्ड्र-नाम-मन्त्र-याग शरणागति रूप पाँचों संस्कारों से संस्कार किये हुये और अनन्य शेषत्व-अनन्य भोग्यत्व, अनन्य शरणत्व रूप तीन आकार से सम्पन्न रहे हुये वे ही भागवतों (श्री वैष्णवों) में उत्तम हैं।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

जितेन्द्रियः शुभाचारः सत्वस्थः शुभलक्षणः।
श्रुतिस्मृतिपुराणार्थविद्वान् दंभविवर्जितः॥
अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञो ह्यग्निहोत्रयुतश्चिरम्।
द्वयनिष्ठो द्वयार्थज्ञः प्रतिष्ठां कर्तुमर्हति॥

इन्द्रियों को जीतने वाला, सुन्दर आचरण वाला, सत्व गुण में स्थित रहने वाला, शुभ लक्षण वाला, पाखण्डरहित, वेद-धर्मशास्त्र-पुराणों के अर्थों का जानने वाला, पाँच अर्थों के तत्त्वों का जानने वाला, अग्निहोत्र से युक्त, अत्यन्त द्वय मन्त्र में निष्ठा वाला और द्वय मन्त्र के अर्थ का जानने वाला हो प्रतिष्ठा करने के योग्य है।

स्निग्धं रम्यं गृहीत्वाऽश्म कारयेच्छुभविग्रहम्।
सर्वावयवसंपूर्णं लक्षणैश्च विराजितम्॥

चिकने और सुन्दर पत्थर को लेकर सब अंगों से सम्पूर्ण अर्थात् संयुक्त और सब लक्षणों से सुशोभित सुन्दर मूर्त्ति को बनवावे।

श्रीभूमिसहितं देवं कारयेच्छुभविग्रहम् ।
एकादश्यां शुक्लपक्षे द्वादश्यां श्रवणेऽपि वा ।।

श्री देवी भू देवी के सहित नारायण देव के कल्याण स्वरूप मूर्ति को बनवावे। एकादशी के दिन शुक्ल पक्ष में अथवा द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में।

रोहिण्यामिन्दुवारे वा तथैवादितिभे शुभे ।
कार्तिके मार्गशीर्षे वा नभस्ये चोत्तरायणे ।।
शुभेऽह्नि शुभलग्ने वा शुभग्रहनिरीक्षिते ।
प्रतिष्ठां कारयेद्विद्वान् यथोक्तविधिना द्विजः ।।

अथवा रोहिणी नक्षत्र में और सोमवार के दिन उसी प्रकार रविवार दिन शुभ नक्षत्र में, या कार्तिक मास में, किंवा अगहन मास में, अथवा भाद्र मास में उत्तरायण में शुभ दिन और शुभ ग्रहों से देखे गये शुभ लग्न में विद्वान् ब्राह्मण, यथोक्त विधि से प्रतिष्ठा करवावे।

श्रौतस्मार्तागमोक्तानामर्चनं विधिना द्विजः ।
क्रियालोपान्न कर्त्तव्यं विष्णोराराधनं परम् ।।

ब्राह्मण, श्रुति-स्मृति-आगम में कहे गये की विधि से अर्चना करे। किन्तु, विष्णु का श्रेष्ठ आराधन क्रिया के लोप से नहीं करना चाहिये।

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलाद्यैश्च भक्तितः ।
एवमभ्यर्चयेद्विष्णुं यावज्जीवमतन्द्रितः ।।

आलस्य रहित, धूपों और दीपों से, नैवेद्य और भक्तिपूर्वक पान आदिकों से यावज्जीवन विष्णु की इस प्रकार अर्चना करे।

शालग्रामशिलायां तु गृहिभिः सिद्धिरिष्यते ।
तस्मिन्संपूजयेद्देवं स्थानेषु च गृहेषु च ।।

गृहस्थों के द्वारा शालग्राम शिला मे सिद्धि मानी गई है; उस समय स्थानों में और घरों में देव की भलीभाँति पूजन करे।

हारीत स्मृति में लिखा है—

शालग्रामशिलायां तु पूजनं परमात्मनः ।
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशयः ।।

शालग्राम की शिला में परमात्मा का पूजन करना तो कोटि-कोटि गुणों की अधिकता होगी। इसमें सन्देह नहीं है।

न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया।
शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन्सन्निहितः सदा।।

शालग्राम के पूजन में न जप और न अधिवास तथा न स्थापन की क्रिया रहती है। विष्णु सदा उस सालग्राम में युक्त रहा करते हैं।

मूर्तीनां च हरेः स्वस्य यस्यां प्रीतिरनुत्तमा।
तस्यामेव तु तान् ध्यात्वा पूजयेत्तद्विधानतः।।

और नारायण की मूर्तियों में अपनी जिसमें सबसे श्रेष्ठ प्रीति होवे, उसी में उनको ध्यान करके उस विधान से पूजन करे।

तन्मूर्त्यन्तरबिम्बे तु न यष्टव्यं तदेव तत्।
शालग्रामशिलायां तु यष्टव्यास्त्वष्टमूर्तयः।।

उन मूर्त्यन्तरों के बिम्ब (मूर्त्ति) में नहीं पूजन करना चाहिये। उन्हीं को उस शालग्राम की शिला में तो आठों मूर्त्तियों को पूजन करना चाहिये।

इसके अनन्तर उन शालग्रामों के लक्षण लिखे जाते हैं।

स्कन्द पुराण में लिखा है—

स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला तथैव च।
रक्ता सूक्ष्मा च वक्रा च महास्थूलात्वलांछिता।।
कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका।
बृहन्मुखा बृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवा पुनः।।
बद्धचक्राऽथवा काचिद्भग्नचक्रात्वधोमुखा।।

चिकनी शालग्राम शिला, काली और कुछ पीलापन से युक्त सफेद रंग वाली, पीले रंग वाली और नीली, लाल और छोटी, टेढ़ी तथा बहुत बड़ी, चिह्न-रहित, कपिल (कैल या गेरू) रंग वाली, चित्र (अनेक रंग या चितकावर) रंग वाली, खण्डित या फूटी हुई, बहुत चक्र वाली, एक चक्र वाली, बड़े मुख वाली, बड़े चक्र वाली, चक्र लगी हुई अथवा फिर बंधे हुये चक्र वाली या कोई खण्डित चक्र वाली और नीचे मुख वाली शालग्राम शिला होवें।

अब उन शालग्रामों का माहात्म्य वर्णन किया जाता है।

उसी स्कान्द पुराण में लिखा है—

स्निग्धा स्निग्धकरा मन्त्रे कृष्णा कीर्तिं ददाति च।
पाण्डुरा पापदहना पीता पुत्रफलप्रदा।।

चिकनी शालग्राम शिला, मन्त्र में स्नेह कराने वाली होती है और काले रंग वाली कीर्ति अर्थात् यश को देती है। कुछ पीलापन से युक्त सफेद रंग वाली, पापों को दग्ध करने वाली होती है। पीले रंग वाली, पुत्र रूप फल को प्रदान करने वाली होती है।

नीला संदिश्यते लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिकी।
सूक्ष्मा चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिका ॥

नील रंग वाली शालग्राम की शिला, लक्ष्मी को (रुपये-पैसे अन्नादि को) प्रदान करती है। लाल रंग वाली, रोग को देने वाली होती है। छोटी सदा व्याकुलता को देने वाली है और टेढ़े आकार वाली, दरिद्रता को देने वाली है।

स्थूला निहन्ति चैवायुर्निष्फला तु ह्यलांछिता।
कपिला कर्बुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका ॥
बृहन्मुखा बृहच्चक्रा लग्नचक्राऽथवा पुनः।
बद्धचक्राऽथवा काचिद्भग्नचक्रा त्वधोमुखा ॥
पूजयेद्यः प्रमादेन दुःखमेव लभेत्तु सः ॥

और बहुत बड़ी शालग्राम मूर्त्ति, आयु को नाश करती है, परन्तु निश्चय रूप से बिना चक्र चिह्न वाली, कोई फल देने वाली नहीं होती। कपिला (गेरू) रंग वाली, चित्र (चितकावर अर्थात् अनेक रंग) वाली, खण्डिता (फूटी हुई), बहुत चक्र वाली, एक चक्र वाली, बड़े मुख वाली, बड़े चक्र वाली, लगे हुये चक्र वाली, अथवा फिर बँधे हुए चक्र वाली या कोई भग्न (खण्डित) चक्र वाली और नीचे मुख वाली शालग्राम शिलाओं की जो असावधानता से पूजा करेगा, वह दुःख को ही प्राप्त करेगा।

कपिला च भ्रमावर्ता रेखावर्ता च या खिला।
दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ॥

और जो शालग्राम शिला, कपिल (गेरू) रंग वाली और सम्पूर्ण सब ओर से घिरी हुई रेखा से युक्त है, वह तो, दुःख देने वाली जानने के योग्य है; कदापि सुख देने वाली नहीं है। [ये सब बातें सकाम भाव से पूजा करने वालों के विषय में कही गई हैं। निष्काम भाव से शालग्रम की पूजा करने वालों के विषय में आगे पढ़िये—]
ब्रह्म पुराण में लिखा है—

खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं विभेदितम्।
शालग्रामशिलाभूतं शैलदोषो भवेन्न हि ॥

टुकड़ा किया हुआ, फूटा हुआ, चूर्ण किया हुआ, एक ओर दरका हुआ अर्थात् फटा हुआ, छेद किया हुआ, शालग्राम शिला स्वरूप पर्वत का दोष नहीं होगा।

धात्रीफलप्रमाणं स्यात्करणोभयसंपुटा।
पूजनीया प्रयत्नेन शिला चैतादृशी शुभा॥

शालग्राम आँवले के फल के समान प्रमाण वाला होवे और दोनों करणों से संयुक्त होवे। ऐसी सुन्दर शालग्राम शिला प्रयत्न के द्वारा पूजने के योग्य होती है।

शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुच्चारयेन्नरः।
विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षानुमोदकः॥
सर्वे ते नरकं यान्ति यावदाभूतसंप्लवम्।

जो मनुष्य, शालग्राम शिला के विषय में मूल्य (कीमत) को उच्चारण करे अर्थात् बोले; बेचने वाला और बेचने के लिये सम्मति देने वाला और जो परीक्षा का अनुमोदन करने वाला होवे; जब तक संसार का महाप्रलय होगा, तब तक अर्थात् महाप्रलय (ब्रह्मा की आयु पर्यन्त) वे सब नरक को प्राप्त करते हैं।

कपिलो नारसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः।
ब्रह्मचर्येण पूज्योऽसावन्यथा विघ्नदो भवेत्॥

उत्तम शोभा वाले; कपिल (गेरू) वर्ण, बड़े चक्र वाले नरसिंह होते हैं, वह ब्रह्मचर्य से पूजा करने के योग्य होते हैं; नहीं तो विघ्नदायक होते हैं।

अतिपापसमाचाराः कर्मण्यनधिकारिणः।
शालग्रामार्चका वैते नैव यान्ति यमालयम्॥

बहुत पापों के आचरण करने वाले शास्त्रीय कर्म में नहीं अधिकार वाले ये शालग्राम की पूजा करने वाले हों तो निश्चय यम के स्थान को नहीं जाते हैं।

कामक्रोधप्रलोभैश्च व्याप्तोऽसौ वै नराधमः।
सोऽपि याति हरेर्लोकं शालग्रामशिलार्चनात्॥

और वह नीच मनुष्य, निश्चय काम और क्रोध के प्रलोभनों के द्वारा पूरित रहने वाला शालग्राम की शिला के पूजन करने से वह भी नारायण के लोक वैकुण्ठ को चला जाता है।

अशुचिर्वा दुराचारी सत्यशौचविवर्जितः।
शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्॥

अपवित्र या दूषित आचरण करने वाला हो तथा सत्य और पवित्रता से रहित हो, शालग्राम की शिला को स्पर्श करके तुरन्त ही पवित्र हो जाता है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा।
शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचन॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों का अथवा उत्तम शूद्रों [जिनके हाथ का पानी ब्राह्मण आदि द्विजाति लोग पीते हैं] का भी शालग्राम के पूजन में अधिकार है; किन्तु दूसरों का कभी अधिकार नहीं है।

पूर्वोक्त "अति पाप समाचारः"—इस श्लोक से लेकर उपर्युक्त श्लोक के अन्तिम चरण "न चान्येषां कदाचन" तक प्रशंसा की अतिशयोक्ति का वचन कहा गया है; परन्तु सम्प्रदाय का प्रकार दूसरा है।

बिना तीर्थैर्विना दानैर्बिना यज्ञैर्बिना मखैः।
शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्॥

तीर्थों के बिना, दानों के बिना, पूजाओं के बिना, यज्ञों के बिना शालग्राम की शिला को स्पर्श करके तुरन्त ही पवित्र हो जायगा।

हारीत स्मृति में लिखा है—

ब्राह्मणैः सर्वैः पूज्योऽर्हः शुचैरप्यशुचैरपि।
स्त्रीशूद्रयोः करस्पर्शं बज्रादपि सुदुष्करम्॥

पवित्र भी और अपवित्र भी सब ब्राह्मणों के द्वारा शालग्राम विग्रह पूजा करने के योग्य है। किन्तु, स्त्री-शूद्र का हाथों से छू देना, बज्र से भी अत्यन्त कठोर भगवान् के लिए होता है।

पञ्चसंस्कारसंपन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः।
शालग्रामशिलायां तु पूजयेत् पुरुषोत्तमम्॥

तप्त शंखचक्रादि पाँचों संस्कारों से सम्पन्न रहा हुआ है और द्वय-मन्त्र के अर्थ का पण्डित, शालग्राम शिला में ही पुरुषोत्तम नारायण का पूजन करे।

वाराहं नारसिंहं च हयग्रीवं च वामनम्।
ब्राह्मणः पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्तिं च केशवम्॥

ब्राह्मण, वराह और नृसिंह, हयग्रीव और वामन, विष्णु, यज्ञ मूर्ति तथा केशव की पूजा करे।

क्षत्रियः पूजयेद्रामं केशवं मधुसूदनम्।
नारायणं वासुदेवं वैश्यः संपूजयेत्तथा॥

क्षत्रिय, राम, केशव और मधुसूदन का पूजन करे तथा वैश्य, नारायण और वासुदेव का पूजन करे।

बालगोपालवेशं च स्त्रीशूद्रैः पूजयेत्सदा।
द्विजानामेव नान्येषां शालग्रामशिलार्चनम्॥

और स्त्री शूद्रों को सदा बाल गोपाल के वेष की पूजा करनी चाहिये। शालग्राम शिला का पूजन करना ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य रूप द्विजों के लिए है; दूसरों के लिये नहीं है।

स्थण्डिले हृदये वाऽपि पूजयेच्छूद्रयोनिजः।
बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेदद्विजः सदा॥

द्विजत्व से रहित शूद्र योनि में जन्म लिया हुआ, सदा बालकृष्ण की मूर्त्ति रूप देव को हृदय में ग्रहण करे अथवा चबूतरे पर विराजमान करके पूजन करे।

अर्चनं वन्दनं दास्यं प्रणामं दर्शनं नृणाम्।
शालग्रामशिलायां तु सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥

मनुष्यों के शालग्राम शिला में तो, पूजन-वन्दन-दासता-प्रणाम-दर्शन सभी करोड़ों गुण हो जाते हैं।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
पौरुषेण तु सूक्तेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम्॥

वह, पुरुष सूक्त के द्वारा पुरुषोत्तम नारायण की पूजा करे तो, सब तीर्थों में स्नान कर लिया और सब यज्ञों में दीक्षित हो चुका।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

पञ्चरात्रविधानेन तथा वैखानसेन वा।
स्मृत्युक्तेनाथवा कुर्यात् क्रियालोपं न कारयेत्॥

नारद पाञ्चरात्र के विधान से अथवा वैखानस शास्त्र के विधान से वैसी भगवान् की पूजा करे अथवा स्मृति (धर्मशास्त्र) में कहे गये विधान के द्वारा करे; किन्तु क्रिया का लोप नहीं करवावे।

एवं संपूजयेद्देवं यावज्जीवं द्विजोत्तमः।
श्रौतस्मार्तागमोक्तानां कुर्यादन्यतमक्रियाम्॥

ब्राह्मणोत्तम, यावज्जीवन अर्थात् जीवन पर्यन्त इस प्रकार नारायण देव की पूजा करें। श्रुति-स्मृति-पाञ्चरात्र आगम में कहे हुओं में से किसी एक क्रिया को करे।

सूतके मृतके वाऽपि विष्णुं नित्यं तथार्चयेत् ।
शालग्रामशिलां स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत् ।।

सन्तान उत्पत्ति के छूतक होने पर अथवा मृतक के छूतक होने पर भी विष्णु की उस पूर्वोक्त प्रकार से नित्य पूजा करे । शालग्राम शिला को स्पर्श करके तुरन्त ही पवित्र हो जायगा ।

मद्भक्तिबलमाश्रित्य मद्भक्तो दीक्षितो यदि ।
न त्यजेन्मम कर्माणि सूतके मृतकेऽपि वा ।।
सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुं तथाऽर्चयेत् ।

मेरी भक्ति के बल को अवलम्बन करके मेरा भक्त यदि दीक्षित है, तथापि, सन्तान-जन्म के छूतक होने पर अथवा मृतक के छूतक होने पर भी मेरे कर्मों को नहीं त्याग करे । जन्म-सूतक होने पर अथवा मरण-छूतक होने पर नित्य विष्णु की उस पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करे ।

इति श्री नारायणसारसंग्रहे याग-संस्कारो नाम

पंचमसंस्कारः ।

———

आर० ए० कश्यप
बुक बाइन्डर
राम की पैड़ी, अयोध्या

अथ भगवदाराधनक्रमः

अब भगवान् का आराधनक्रम लिखा जाता है—

हारीत स्मृति में लिखा है—

> अर्चनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमं च वन्दनम् ।
> स्तुतिं योगं समाधिं च तथा मन्त्रार्थचिन्तनम् ।।
> एतैर्नवविधा प्रोक्ता देवेज्या वैष्णवोत्तमैः ।।

उत्तम श्री वैष्णवों ने, पूजन करना, मन्त्र पढ़ना, ध्यान करना, हवन करना और वन्दन (साष्टाङ्ग प्रणाम करना), स्तुति करना, योग और समाधि तथा मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करना—इनके द्वारा नव प्रकार वाली नव (९) पूजाएँ कहीं हैं।

> यो नित्यमर्चयेद्देवं यावज्जीवमतन्द्रितः ।
> गण्डकी गोमती चक्रं तुलसी ताम्रभाजनम् ।।
> घण्टानादं शंखतोयमष्टमं चानुलेपनम् ।
> सर्वेषामप्यलाभे तु शंखमेकं विशिष्यते ।।
> शंखोदकं सदा पूतमतिप्रियतरं हरेः ।

आलस्य रहित जो नित्य जीवन पर्यन्त नारायण देव की पूजा करेगा। गण्डकी, गोमती, चक्र, तुलसी, ताँबे का बर्तन, घण्टा का शब्द, शंख का जल और आठवाँ मलयागिरि चन्दन का लेपन करना। परन्तु, सबों की अप्राप्ति होने पर भी एक शंख को श्रेष्ठ माना जाता है। शंख का जल सदा पवित्र, नारायण का अत्यन्त प्रियतर है।

पाञ्चरात्र की 'अनन्त संहिता' में लिखा है—

> पञ्चसंस्कारयुक्तानां वैष्णवानां विशेषतः ।
> गृहार्चनविधाने तु शंखं घण्टारवं त्यजेत् ।।

पाँच संस्कारों से युक्त श्री वैष्णवों के विशेष रूप से घर में भगवान् की पूजा विधान में शंख बजाने को और घण्टा के शब्द को त्याग करे।

घण्टानादं तथा वाद्यं नृत्यगीतादिकान्यपि ।
नैवेद्यकाले यः कुर्याद्रौरवं नरकं व्रजेत् ।।

जो, नैवेद्य अर्थात् भोग लगने के समय घण्टा के शब्द को तथा बाजा बजाने को और नाच-गान आदिकों को करे तो, रौरव नरक को जायगा ।

नारद पाञ्चरात्र की 'हयग्रीव संहिता' में लिखा है—

प्रपन्नैर्नियतैर्विप्रैः प्रत्यहं मत्परायणैः ।
गृहार्चनविधौ शंखं घण्टानादं च वर्जयेत् ।।

मुझ परमात्मा को श्रेष्ठ आधार-प्राप्य-उपाय मानने वाले शरणागत संयत मन वाले ब्राह्मणों को प्रतिदिन घर में भगवान् की पूजा की विधि में शंख को और घण्टा के शब्द को वर्जित करना चाहिये । यह कुछ लोगों का मत है ।

हारीत स्मृति में लिखा है—

पाद्यार्घ्याचमनस्नानपात्राणि स्थाप्य पूजयेत् ।
पूरयित्वा शुभं जलं पात्रेषु कुसुमैर्युतम् ।।

पाद्य-अर्घ्य-आचमन-स्नान के पात्रों को रख करके पूजन करे । पात्रों में फूलों से युक्त स्वच्छ जल को भरकर········· ।

द्रव्याणि निक्षिपेत्तेषु मङ्गलानि यथाक्रमम् ।
द्रव्याणामप्यलाभे तु तुलसीपत्रमाक्षिपेत् ।।

उन पाद्य-अर्घ्य-आचमन-स्नान-शुद्धोदक नाम वाली पाँचों कटोरी रूप पात्रों में यथा-क्रम अर्थात् क्रमानुसार मङ्गल द्रव्यों को डाले । परन्तु द्रव्यों के भी अप्राप्त होने पर तुलसी पत्र को डाले ।

उद्धरिण्या ततो दद्यात पाद्यार्घ्याचमनं हरेः ।
स्नानपात्रादमादाय स्नापयेत्कमलापतिम् ।।

तत्पश्चात् आचमनी से नारायण को पाद्य-अर्घ्य-आचमन को देवे और स्नान-पात्र के जल को लेकर लक्ष्मी के पति नारायण को स्नान करावे ।

कस्तूरीतिलकं गन्धं पुष्पाणि सुरभीणि च ।
वस्त्रं चैवोपवीतं च दद्यादाभरणानि च ।।

कस्तूरी से तिलक, गन्धपुष्पी [अथवा केसर या मलयागिरि चन्दन] और सुगन्धित फूलों को तथा वस्त्र का एवं यज्ञोपवीत को और भूषणों को देवे ।

पुनरर्घ्यादिकं दत्वा धूपदीपौ नियोजयेत् ।
गुग्गुलं माहिषाख्यं च शालं निर्यासमेव च ।।

फिर अर्घ्य आदिक को देकर धूप-दीप को नियुक्त करे अर्थात् देवे। गुग्गुल और माहिष नाम वाली औषधि तथा शाल वृक्ष का गोंद।

अगरुं देवदारुं च उशीरं श्रीफलं तथा।
ह्रीबेरं चन्दनं मुस्ता दशांगं धूपमुच्यते॥

अगरु और देवदारु, खस तथा बेल की जड़, नेत्र बाला नामक औषध मलयागिरि चन्दन और मुस्ता—दश अंगों वाला धूप कहा जाता है।

गवाज्येन समं योज्यं दद्याद्धूपं सुवासितम्।
संयोज्य वह्निना दीपं भक्त्या विष्णोर्निवेदयेत्॥

गाय के घी के साथ मिलाकर सुगन्धित धूप को देवे और अग्नि से दीप को जलाकर भक्ति से विष्णु को निवेदन करे।

नैवेद्यं शुचि हृद्यान्नं पायसापूपसंयुतम्।
शुद्धं हविष्यं हृद्यं च सुरुच्यं वै निवेदयेत्॥

पवित्र, मन को प्रिय लगने के योग्य अन्न पायस (तस्मै)—मालपूए से संयुक्त नैवेद्य को और पवित्र, हृदय को प्रिय, अच्छी रुचि के योग्य ही हविष्य (घृत-दुग्ध से तैयार किये हुये) को नारायण के लिये निवेदन करे।

नीराजनं ततो दत्वा ताम्बूलं च निवेदयेत्।
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः॥

तदनन्तर आरती देकर पान को निवेदन करे अर्थात् समर्पण करे और तत्पश्चात् सब ही विष्णु सम्बन्धि मन्त्रों के द्वारा पुष्पाञ्जली करे।

प्रणमेच्च ततो भक्त्या साष्टांगं दक्षिणा दिशि।
उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा॥
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

और तदनन्तर भगवान् की दाहिनी दिशा में भक्ति अर्थात् प्रेम से आठ अंगों के सहित प्रणाम करे। छाती से, मस्तक से, दृष्टि से, मन से तथा वाणी से, दोनों पावों से, दोनों हाथों से, दोनों घुटनों से—आठों अंगों के द्वारा प्रणाम कहा जाता है।

अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमन्दिरे।
जपहोमनमस्कारान्न कुर्यात् केशवालये॥

भगवान् के मन्दिर में भगवान् के आगे, भगवान् के पीछे, भगवान् के बायें भाग में, भगवान् के सामने, मन्दिर के भीतर में जप-हवन-नमस्कारों को नहीं करे।

वाराह पुराण में लिखा है—

वस्त्रप्रावृतदेहस्तु यो नरः प्रणमेत्तु माम् ।
स स्त्रीत्वं जायते मूर्खः सप्त जन्मनि भामिनि ।।

वाराह भगवान् भू-देवी से कहते हैं—हे प्रिये ! जो मनुष्य, वस्त्र से ढके हुये देह वाला अर्थात् वस्त्र ओढ़े हुए मुझको प्रणाम करे तो, वह मूर्ख, सात जन्म तक स्त्री योनि में जन्म पाता है अर्थात् स्त्री होता है ।

एकहस्तप्रणामं च एका चैव प्रदक्षिणा ।
अकाले दर्शनं विष्णोर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।।

पुनः एक हाथ से प्रणाम करना और एक बार प्रदक्षिणा करना, शयन आदि में नहीं समय रहने पर नारायण का दर्शन करना, पहले किये हुये पुण्य को नाश करता है ।

प्रसार्य बाहू पादौ च बद्धेनाञ्जलिना सह ।
स्तुवन् स्तुतिभिरित्येव प्रणामो दीर्घ उच्यते ।।

बँधी हुई अञ्जली के साथ दोनों बाहुओं और दोनों पावों को पसार करके स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करता हुआ—इस प्रकार लम्बा प्रणाम कहा जाता है ।

'आलवन्दार' के भाष्य में लिखा है—

प्रणम्य कृष्णं सहसा पांसुश्लिष्टे महीतले ।
निष्कल्मषो भवेत्सद्यो ललाटे पांसुमण्डनात् ।।

धूली से युक्त पृथ्वी पर तुरन्त कृष्ण को प्रणाम करके ललाट में धूली के सुशोभित होने से तुरन्त पाप रहित हो जायगा ।

दुर्गसंसारकान्तारमपारमभिधावतः ।
एकः कृष्णनमस्कारो मुक्तितीरस्य देशिकः ।।

दुर्गम स्थान (भयंकर), संसार रूप, चोर-कण्टक आदिकों से युक्त मार्ग में सब ओर दौड़ते रहने वाले के लिये एक कृष्ण का नमस्कार मुक्ति के किनारे का गुरु है ।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।।

कृष्ण का एक भी किया हुआ प्रणाम, दश अश्वमेध नामक यज्ञ के अन्तिम स्नान के समान है । दश अश्वमेध यज्ञ करने वाला, फिर जन्म को प्राप्त करता है, परन्तु कृष्ण को प्रणाम करने वाला, फिर जन्म के लिये नहीं होता ।

नमस्कारकृतो यज्ञः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः।
नमस्कृत्वा महायज्ञ अश्वमेधफलं लभेत् ।।

नमस्कार (शरणागति) के द्वारा किया हुआ यज्ञ, सब यज्ञों में उत्तम से उत्तम है। महायज्ञ रूप नमस्कार करके अश्वमेध के फल को प्राप्त करेगा।

प्रणम्य दण्डवद् भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत्।
स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।।

जो, नमस्कार (शरणागति) के द्वारा पृथ्वी पर लाठी की भाँति गिरकर प्रणाम करके पूजा करे तो, वह जिस गति को प्राप्त करता है, उस गति को सैकड़ों यज्ञों के द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

नम इत्येव यो ब्रूयान्मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः।
तस्याक्षयं भवेल्लोकं श्वपचस्यापि नारद ।।

श्रद्धा से युक्त जो मेरा भक्त 'नमः' इतना ही बोले, हे नारद! उस चाण्डाल को भी अविनाशी लोक (वैकुण्ठ) होगा।

हरिममरगणार्चितांघ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि भक्त्या।
तमपगतसमस्तपापपुञ्जं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ।।

(हे अंतक!) जो सत्य रूप से भक्ति के द्वारा ही देवगणों से पूजित चरण कमल वाले नारायण को प्रणाम करता है, घृत डाली हुई अग्नि के समान समस्त पाप-समूहों से रहित उस प्रणाम करने वाले को छोड़कर चले जाओ।

एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि भक्त्या प्रयुक्त इह चक्रधरे प्रणामः।

इस लोक में भक्ति के साथ चक्रधारी श्रीमन्नारायण के प्रति किया हुआ एक भी प्रणाम अत्यन्त दुस्तर अनेक पापों को भी (नष्ट कर देता है।)

त्वदंघ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचिद्यथा तथा वाऽपि सकृत् कृतोऽञ्जलिः।
तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ।।

(प्रभो!) तुम्हारे चरण कमल को उद्देश करके कभी (काल का नियम नहीं), किसी ने (जाति का नियम नहीं) अथवा जैसे-तैसे भी (कुछ विधि नहीं) एक बार दोनों हाथों को जोड़कर अञ्जलि की; उसी समय सम्पूर्ण रूप से उसके समस्त पापों को हरण कर लेता है और सभी पुण्यों को उत्पन्न करके पुष्ट करता है। फिर कभी नहीं हीनता को प्राप्त करता है।

इत्यादि वचनों के द्वारा प्रणाम की प्रशंसा की गई है।

नमस्ते नमस्ते त्रयीनाथ विष्णो नमस्ते नमस्ते नमो रङ्गशायिन्।
नमस्ते नमस्ते प्रपन्नार्तिहारिन् ! नमस्ते नमस्ते श्रिताभीष्टदायिन् ।।

हे तीनों लोकों के स्वामिन् ! हे समस्त चेतन अचेतनों में व्यापक रहने वाले ! तुमको नमस्कार है, तुमको नमस्कार है। हे रंग धाम में सोने वाले ! तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है। पुनः नमस्कार है। हे प्रपन्नों (शरणागतों) के दुःखों को हरने वाले ! तुम्हारे लिए नमस्कार है, तुम्हारे लिये नमस्कार है। हे आश्रितों के इच्छित फलों के देने वाले ! तुमको नमस्कार है, तुमको नमस्कार है।

इस प्रकार बोलता हुआ नमस्कार की बारम्बार आवृत्ति देखी जाती है। उनमें भगवद्भक्ति के बढ़ने पर पुनरुक्ति कही गई है; इस प्रकार दो-दो बार 'नमः-नमः' देखे जाते हैं।

आह्वयश्च प्रशंसायां प्रतिज्ञायां प्रलपने।
तर्जने भयविस्मये पौनःपुन्यमलंकृतिः ॥

नाम की प्रशंसा में और प्रतिज्ञा में, ऊँचे स्वर से बोलने में, डाँटने-फटकारने में, भय में और आश्चर्य में पुनः पुनः शब्द सुशोभित होता है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

यच्छास्त्रेषु निषिद्धं तु तत्प्रयत्नेन वर्जयेत्।
भावदुष्टं कालदुष्टं क्रिया दुष्टं तथैव च।
संसर्गदुष्टमपि च वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ॥

परन्तु जो शास्त्रों में निषिद्ध हो, उसको प्रयत्न के द्वारा त्याग करे। यज्ञ कर्म में भाव (विचार) से दूषित को, समय से दूषित को और उसी प्रकार क्रिया से दूषित को और संसर्ग से दूषित को भी त्याग करे।

रूपतो गन्धतो वाऽपि यच्चाभक्ष्यसमं भवेत्।
भावदुष्टं च तत्प्रोक्तं मुनिभिर्धर्मपारगैः ॥

रूप से अथवा गन्ध से और जो अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य मांस-मदिरा आदि) के समान होवे, उसको ही भाव (विचार) से दूषित अन्न धर्म पारंगत मुनियों ने कहा है।

आरनालं च मद्यं च करनिर्मथितं दधि।
हस्तदत्तं च लवणं क्षीरं घृतं पयांसि च ॥
शब्देन पीतं मुक्तं च गव्यं ताम्रेण संयुतम्।
क्षीरं च लवणोन्मिश्रं क्रियादुष्टमिहोच्यते ॥

कांजी (कुंजल), मद्य और हाथ से मथा हुआ दही एवं हाथ से दिया हुआ नमक, दूध, घी और जल, शब्द से पिया हुआ और शब्द से छोड़ा हुआ, ताँबे के पात्र

से संयुक्त गाय का घी या दूध और नमक मिला हुआ दूध इस लोक में क्रियादूषित कहा जाता है ।

एकादश्यां च यच्चान्नं यच्चान्न राहुदर्शने ।
सूतके मृतके चान्नं शुष्कं पर्युषितं तथा ।।
अनिर्दशाहं गोक्षीरं षष्ठयां तैलं तथैव च ।
नदीषु चाल्पखातेषु सिंहकर्कटयोर्जलम् ।।
निःशेषजलवाप्यादौ यत्प्रविष्टं नवोदकम् ।
नातीतपञ्चरात्रं तु कालदुष्टमिहोच्यते ।।

जो अन्न, एकादशी के दिन खाया जाता है और जो अन्न, राहु के देखने पर खाया जाता है, किसी के सन्तान होने पर या किसी के मर जाने पर उसके घर की बनी हुई रसोई का अन्न खाया जाता है; सूखा हुआ भात आदि आदि अन्न तथा रात का बना हुआ बासी अन्न, विना दश दिन बीते हुए ब्यायी हुई गाय का दूध और उसी प्रकार षष्ठीतिथि के दिन तैल लगाना, नदियों में और छोटे गड्ढों में सिंह-कर्कट महीनों में भरे हुए वर्षाती जल, सम्पूर्ण रूप से सुखी हुई बावड़ो आदिकों में जो नया जल प्रवेश किया हुआ है, परन्तु पाँच रात नहीं बीती हैं— उपर्युक्त सभी काल से दूषित इस संसार में कहे जाते हैं ।

शैव पाषण्डपतितैर्विकर्मस्थैर्निरीश्वरैः ।
अवैष्णवैर्द्विजैः शूद्रैर्हरिवासरभोक्तृभिः ।।
श्वकाकसूकरोष्ट्राद्यैरुदक्यासूतिकादिभिः ।
पुंश्चलीभिश्च नारीभिर्वृषलीपतिभिस्तथा ।।
दृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च भुक्तशेषं तथैव च ।
अभक्ष्येण च संयुक्तं सांसर्गं दुष्टमुच्यते ।।

शिवभक्त, पाषण्डी और पतितों के द्वारा, शास्त्र विपरीत कर्मों में स्थित रहने वालों के द्वारा, ईश्वर को नहीं मानने वालों के द्वारा, अवैष्णव-ब्राह्मणों के द्वारा, शूद्रों के द्वारा, एकादशी के दिन भोजन करने वालों के द्वारा, कुत्ते-कौवे-सूअर-ऊँट आदिकों के द्वारा, रजस्वला स्त्री और प्रसूती आदि-स्त्रियों के द्वारा और पुंश्चली (छिनाल) स्त्रियों के द्वारा, तथा वृषली (शूद्री) स्त्रियों के पतियों के द्वारा देखे हुए और स्पर्श किए हुए, दिये हुए और उसी प्रकार जूठे भोजन को एवं अभक्ष्य (मद्य-मांस आदि) भोजन संयुक्त रहे हुए को संसर्ग दूषित कहा जाता हैं ।

बिम्बं शिग्रुं च कालिंगं तिलपिष्टं च मूलकम् ।
कोशातकीमलाबुं च पीलुं श्लेष्मातकं फलम् ॥
नालिका नारिकेलादि जातिदुष्टमिहोच्यते ।

कुन्दरू (परबल की भाँति लाल फल) और सहजन, कुत्सित आकार वाला फल, तिलौरी और मूली, चिचिढ़ा (लम्बा और टेढ़ा साँप की भाँति आकार वाला) तथा लौकी (कद्दू), देशी अखरोट, लसोढ़े का फल, कमलगट्टा और नारिकेल आदि जाति दूषितं इस लोक में कहे जाते हैं।

एवं सर्वाण्यभक्ष्याणि तत्संसर्गाच्च संत्यजेत् ।
कोद्रवं चौलकौलत्थं यावनालं तथा शितम् ॥
निष्पावांश्च मसूरांश्च तुच्छधान्यादि संभवम् ।
भुक्तं पर्युषितं रूक्षं यज्ञकर्मणि वर्जयेत् ॥

इस प्रकार सब अभक्ष्यों (नहीं खाने योग्य वस्तुओं) को उनके संसर्ग से ही भली भाँति त्याग करे। कोदो, चीना कुल्थी, मकई (मक्का) तथा किसी का खाया हुआ अन्न और पछोर कर फेंक दिये जाने वाले चुन्नी-खुद्दी रूप अन्नों को, तथा मसूर नामक अन्नों को, चावल रहित खखरी उत्पन्न हुए धान्य आदि अन्नों को, अपने से खाये हुये अन्न को, बासी अन्न, बिना घी-दूध का रूखा अन्न यज्ञ कर्म में त्याग करे।

वर्जयेदारनालं च मद्यमांससमानि च ।
निर्यासान्वर्जयेत्सर्वान्विना हिंगुं च गुग्गुलुम् ॥

कांजी (कुञ्जल) को और मद्य (मदिरा)-मांस के समान वालों को त्याग करे। तथा हींग और गुग्गुल को छोड़कर सब द्रव पदार्थों को अर्थात् गोंद या सार वाचक वालों को त्याग करे।

कलंबिकां च निर्गुण्डीं मुण्डीं वार्ताकमेव च ।
पीयूषं लवणं पुष्पं भूतृणं भौतिकं तथा ॥
अनिर्दशाहं गोक्षीरमवत्सायास्तथा श्रृतम् ।
औष्ट्रमैकशफं चैव प्रसतं विड्भुजामपि ॥
ताम्रेण संयुतं गव्यं क्षीरं च लवणान्वितम् ।
घृतं लवणसंयुक्तं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

करंबुआ (कलौंदा) को और शिमालू न्यवारी काले फूल वाली) को, मुराडी (धान के खेतों में उत्पन्न होने वाली लाल और गोल फूल वाली) को और वन भंटा (रान कटेहली) को भी, नये दूध को, नमक, फून, पृथ्वी पर पड़े हुए तृण को तथा भौतिक वस्तु को, बिना दस दिन पूरे हुये व्यायी हुई गाय के दूध को तथा बछड़ा-रहित गाय के दूध को, ऊँट और एक खुर वाले अर्थात् जिसके खुर फटे न हों —ऐसे पशुओं से जन्म लिये हुए को; बिलाड़ के खाये हुओं को भी, ताम्बे के पात्र में रक्खे हुए गाय के दूध को और नमक मिले हुये दूध को और नमक मिले हुये घी को प्रयत्न-पूर्वक त्याग करे।

पालिकं द्रोणशाकं च श्वेतवृंताकमेव च।
वंशाकुरं कोविदारं दूरतः परिवर्जयेत् ॥

पालक शाक को और द्रोण नामक शाक को और उजले (सफेद) बैंगन को भी, बांस के अंकुर को तथा कचनार को दूर से त्याग करे।

कुम्भीकंचुकपिण्याकं घृतकोशातकीं तथा।
मूलिकं च बिम्बफलं मद्यं मांससमानि च ॥

कायफल, केवाँच, प्यार नामक फल, घी कुमार का पत्ता या घीया (परोरा) तथा चिचिढ़ा (साँप की भाँति आकार वाला फल) मूली और बिम्ब फल (कुन्दरू लाल फल परवल की भाँति आकार वाला) मदिरा-मांस के समान ही हैं।

'स्मृति चन्द्रिका' में लिखा है —

बिम्बं च श्वेतवृंताकमलाबुं वर्तुलं तथा।
छत्राकं च बिम्बफलं लशुनं चैवमौद्भिदम् ॥

लाल टमाटर (बिलायती बैंगन) और सफेद बैंगन तथा गोल लौकी (गोल कद्दू) टेकनस (गोबर छत्ता) और कुन्दरू का फल (लाल रंग परवल की भाँति आकार वाला) एवं इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर भेद करके निकलने वाला लहसुन।

तिलपिष्टमलाबुं च कलिंगं शिग्रु गृञ्जनम्।
छत्राकं च बिम्बफलं घृतकोशातकीं त्यजेत् ॥

तिलौरी और लौकी (कद्दू); तर्बुज, सहजन, लहसुन और गाजर, टेकनस (गोबर छत्ता), कुन्दरू का फल और घीया (परोरा) एवं चिचिढ़ा (सर्पाकार) को त्याग करे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है—

पात्रमध्ये यथा पात्रं हस्तमध्ये यथा घृतम् ।
आपोशनं विना भुक्तं त्रयं गोमांसभोजनम् ।।

पात्र के मध्य में जैसे पात्र को रखकर भोजन करे, हाथ के मध्य में जैसे घी को लेवे और आपोशन के बिना भोजन किया हुआ—तीनों गोमांस खाने के समान है।

विवरण—दिन में भोजन की आपोशन क्रिया इस प्रकार है—भोजन के समय "ॐ भूर्भुवस्स्वः ॐ सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि"—इस मन्त्र को बोलते हुये परोसे हुये भोजन के चारों ओर हाथ में जल ले करके गोलाकार उसी जल से घेरा बनावे। तदनन्तर हाथ में जल लेकर "ॐ अमृतोपस्तरणमसि" कहकर पी जावे। तत्पश्चात् भोजन की सब सामग्रियों को थोड़ा सा मिलाकर आँवले के बराबर ग्रास बनाकर निम्नलिखित मन्त्रों को क्रमशः बोलते हुये सात ग्रास तक मुख में जालता जावे। पहले ग्रास का मन्त्र है—(१) ॐ "प्राणाय स्वाहा।" (२) "ॐ अपानाय स्वाहा।" (३) "ॐ व्यानाय स्वाहा।" (४) "ॐ उदानाय स्वाहा।" (५) "ॐ समानाय स्वाहा।" (६) "ॐ ब्रह्मणे स्वाहा।" (७) "ॐ ब्रह्मणि म आत्मा अमृतत्वाय।" तदनन्तर जितना भोजन करना हो, प्रत्येक ग्रास को "ॐ गोविन्दाय नमः" कहकर मुख में डालता जावे। भोजन के मध्य में प्यास लगने पर पानी पीना चाहिये। भोजन की समाप्ति में हाथ में जल लेकर "ॐ अमृतापिधानमसि" बोलकर उस जल को पीकर उठ जावे और मुख-हाथ-पावों को धोवे। तात्पर्य यह कि फिर भोजन न करे। यह दिन में भोजन की आपोशन क्रिया हुई।

रात में भोजन के समय "ॐ भूर्भुवस्स्वः ॐ ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि" मन्त्र बोलकर परोसे हुये भोजन के चारों ओर हाथ में जल लेकर घेरा बनावे और सब क्रियाएँ पूर्वोक्त प्रकार ही हैं। इसी को आपोशन क्रिया कहते हैं।

नारिकेलजलं पीत्वा कांस्यमध्ये मधुस्तथा।
ताम्रपात्रे पयः पीत्वा सुरापानसमं भवेत्।।

नारियल (हुक्का) के पानी को पीकर तथा काँसे के पात्र के मध्य में मधु को यदि खावे एवं ताँबे के पात्र में दूध को पीकर मदिरा पीने के समान होगा।

अश्वारूढे गजारूढे खट्वारूढैकपाणिना।
सन्ध्याशेषजलं पीत्वा पञ्चतोयं सुरासमम्।।

घोड़े पर चढ़ने पर, हाथी पर चढ़ने पर, खाट पर चढ़कर, एक हाथ से और सन्ध्या वन्दन का शेष बचा हुआ जल पीकर—पाँच प्रकार का जल मदिरा के समान है।

शौचान्ते पादशौचान्ते तर्पणान्ते च यज्जलम् ।
हस्ते हस्तमधो हस्तात्पञ्चतोयं सुरासमम् ।।

शौच के (पायखाना होकर गुदा प्रक्षालन करके) अन्त में बचा हुआ जल, पाँव धोने के अन्त में बचा हुआ जल और तर्पण के अन्त में जो जल बच जाता है, हाथ से हाथ में दिया हुआ जल और हाथ से नीचे ढाँका हुआ जल—पाँचों जल मदिरा के समान हैं।

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ।
वैश्यस्यान्नं तु चान्नं स्याच्छूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ।।

ब्राह्मण का अन्न अमृत, क्षत्रिय का अन्न दूध कहा गया है और वैश्य का अन्न, अन्न है; परन्तु शूद्र का अन्न रुधिर (खून) कहा गया है।

शूद्रोदकं शूद्रपक्वं शूद्रेण सह भोजनम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं चाण्डालः कोटिजन्मसु ।।

शूद्र का जल, शूद्र का पकाया हुआ भोजन और शूद्र के साथ भोजन करना—इस जन्म में शूद्रत्व को प्राप्त करता है और करोड़ों जन्मों में चाण्डाल होता है।

अनुच्छिष्टे तु लवणमुच्छिष्टे घृतमेव च ।
वामहस्तं भुवि स्पृश्य तुल्यं गोमांसभक्षणम् ।।

बिना जूठा किये हुये पर नमक देना और जूठा करने पर घी देना और बायें हाथ को भूमि पर रखकर भोजन करना—निश्चय गोमांस खाने के समान हे।

मूत्रं कृत्वा विना शौचं कच्छं बध्वा द्विजाधमः ।
कच्छान्वितो मूत्रयित्वा स मूढो नरकं व्रजेत् ।।

ब्राह्मणाधम, कच्छा से युक्त रहा हुआ, कच्छे को बाँधकर मूत्र करके और मूत्रकर बिना जल से लिंग को धोया हुआ वह अज्ञानी नरक को जायगा।

तैलाभ्यंगे चितादाहे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
स्नानं यावन्न कुरुते तावच्चण्डाल उच्यते ।।

तेल लगाने पर, चिता दाह करने पर, स्त्री के साथ भोग करने पर और क्षौर कर्म करने पर जब तक स्नान नहीं करता है, तब तक चाण्डाल कहा जाता है।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं गुडं पयः ।
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ।।

शूद्र जाति वालों के नमक, मधु, तैल, दही, तक्र (छाँछ या मट्ठा), गुड़ और दूध नहीं दूषित होंगे; सब लोगों में बिक्री करे।

हरिद्रां गोरसं चूर्णं घृतमौषधमेव च।
न तेषां पावको दोषः क्रमुकस्य गुडस्य च॥

हल्दी, गोरस, चूना, घी और औषध (दवा), तूत या पार्श्व-पिप्पल का तथा गुड़ का—उन सबों का पावक दोष अर्थात् आग से पकाने का दोष निश्चय नहीं होता।

इक्षू नपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम्।
भक्षयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥

ऊख (केतारी या आखू), सिंघाड़ा, फल, मूल, पान, दूध और औषध (दवा) को खाकर भी स्नान-दान आदि क्रियाओं को करनी चाहिये।

अभक्षं भक्षमित्याहुस्तिलसर्षपसंयुतम्।
विना मद्यं च मांसं च गृंजनं लशुनद्वयम्॥

पहले जिनको खाने का निषेध किया जा चुका है—ऐसे अभक्ष को तिल-सरसों से संयुक्त (मिले हुये को) भक्ष (खाने को) इस प्रकार कहते हैं; किन्तु मदिरा और मांस तथा गाजर, लहसुन, प्याज को छोड़कर।

प्रजापति स्मृति में लिखा है—

उदक्यायाः समीपस्थमन्नमद्यात्प्रमादतः।
उपवासत्रयं कुर्यान्नातिकृच्छ्रं समाचरेत्॥

रजस्वला स्त्री के निकट में रहे हुये अन्न को प्रमाद से (असावधानता से) खा लेवे तो, तीन उपवास करे। 'अति कृच्छ्र' नामक प्रायश्चित को नहीं करे।

उदक्या स्पृष्ट तत्स्पृष्टमन्नं भुक्त्वा तु कामतः।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यादज्ञानेन त्रिरात्रतः॥

परन्तु, इच्छानुसार रजस्वला से छुए गये उस पुरुष के छुये हुये अन्न को अज्ञान से खाकर तीन रात तक प्राजापत्य नामक व्रत से शुद्धि होगी।

पराशर स्मृति के पूर्व खण्ड में लिखा है—

यो वेष्टितशिरा भुंक्ते यो भुंक्ते दक्षिणामुखः।
वामपादे करं न्यस्य तस्य राक्षसभोजनम्॥

जो माथे में मुरेठा बाँध करके खाता है, जो दक्षिण दिशा में मुख करके खाता है और बायें पैर पर हाथ रखकर खाता है, उसके राक्षस का भोजन है।

अब भगवान् के आराधन में पत्ते का निर्णय लिखा जाता है—

हारीत स्मृति में लिखा है—

पलाशपद्मपत्रं तु गृही यत्नेन वर्जयेत् ।
यतीनां च वनस्थानां पितृणां च शुभप्रदम् ।।

गृहस्थ आश्रमी, पलाश के और पद्म (कमल) के पत्ते को तो यत्नपूर्वक वर्जित करे। सन्यासियों के और वानप्रस्थ आश्रम वालों के तथा पितृ लोगों के लिये शुभ (मंगल) प्रदान करने वाला है।

वटाश्वत्थार्कपर्णानि कुंभीतिन्दुकयोस्तथा ।
एरण्डतालपत्राणि कोविदारकरञ्जकम् ।।
भल्लातकस्य पर्णानि एतानि परिवर्जयेत् ।।

वट, पीपल और आक के पत्तों को तथा कायफल और तेन्द के पत्तों को, रेड और ताड़ के पत्तों को, कचनार और करञ्ज के पत्तों को तथा भेलावे के पत्तों को—इन पत्तों को त्याग करे।

मोचागर्भपलाशं च वर्जयेत्सर्वकर्मसु ।

और केले के स्तम्भ के भीतर में रहे हुये गर्भे के पत्ते को सब कर्मों में वर्जित करे।

मधुकं कुटजं चैव ब्राह्म्यं प्लक्षमुदुम्बरम् ।
मातुलिंगं पानसं च मोचा आम्र फलानि च ।।
फलाख्यपर्णं श्रीपर्णं शुभानीमानि विद्धि मे ।।

महुआ या जेठी मधु, कुरैया, ब्राह्मी, पाँकड़ और उदुम्बर (गूलर), बिजौड़ा नेम्बू और पनस (कटहल) तथा केला, आम के फल नामक पलाश और अरणी—इनको शुभ (मङ्गल स्वरूप) मुझसे जानो।

पलाशं पद्मिनी चूतं कदली हेम राजतम् ।
मधुपत्रेषु यो भुंक्ते ग्रासमेकं च गोफलम् ।।

पलाश, कमलिनी, आम, केले के पत्तों पर, सुवर्ण के पात्र में और चाँदी के पात्र में तथा महुए के पत्तों पर जो खाता है, प्रत्येक ग्रास ही गोदान के समान फल वाला है।

सदण्डं कदलीपत्रं वामभागाग्रसंयुतम् ।
निर्दण्डं च निरग्रं च पशुचर्मसमं भवेत् ।।

केले का पत्ता, डंटी (दण्ड) के सहित और बायें भाग में अग्र भाग से संयुक्त होना चाहिये। परन्तु दण्ड (बीच में डण्टी) से रहित और अग्र भाग से रहित पशु के चमड़े के समान हो जायगा।

करे कार्पासके चैव आयसे ताम्रभाजने।
वटार्काश्वत्थपत्रेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

हाथ में और कपड़े में, लोहे के पात्र में, ताम्बे के पात्र में, वट के आक के पीपल के पत्तों में भोजन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।

मनु स्मृति में लिखा है—

नागवल्लीदले तोयं यत्तोयं फलपुष्पयोः।
तैलतक्रेषु यत्तोयं न दोषो मनुरब्रवीत्॥

पान के पत्ते पर का जल और जो जल फल-फूलों पर रहता है तैल और तक्रों (मट्ठा या छाँछों) में जो जल रहता है, उसका दोष नहीं मनु ने कहा है।

मूषिका मक्षिका चैव स्त्रीमुखं वेदबिन्दु च।
शूद्रभाण्डे कृते तक्रे न दोषो मनुरब्रवीत्॥

चूहा और मक्खी, संभोग काल में स्त्री का मुख और वेद पाठ करते समय थूक का बिन्दु, शूद्र के बर्तन में तैयार किये गये मट्ठे (छाँछ) में दोष नहीं। मनु ने कहा है।

अब भगवान् के आराधन के समय में निषिद्ध पुष्पों का त्याग लिखा जाता है—

न शुष्कैः पूजयेद्देवं न पुष्पैर्धरणीं गतैः।
न विशीर्णदलैर्जुष्टैर्नाशुभैर्नाविकाशिभिः॥

सूखे फूलों से श्रीमन्नारायण देव को नहीं पूजन करे, न पृथ्वी पर गिरे हुये फूलों से पूजा करनी चाहिये और फटे-चिटे दलों से युक्त फूलों से भगवान् की पूजा नहीं करनी चाहिये, न तो अशुभ (सुन्दरता रहित फूलों से) पूजा करनी चाहिये तथा न बिना खिले हुये फूलों से ही भगवत्पूजा करनी चाहिये।

पूतिगन्धीन्यगन्धीनि चाम्लगन्धीनि वर्जयेत्।
नाग्राह्यैः करवीरैश्च कुसुमैरर्चयेद्धरिम्॥

सड़े-गले दुर्गन्ध वाले, बिना सुगन्ध वाले और खट्टे गन्ध वाले फूलों को त्याग देवे। अग्राह्य (नहीं लेने योग्य) और कनेर के फूलों से नारायण की नहीं अर्चना (पूजा) करे।

पतितैर्मुकुलैर्म्लानैः श्वासैर्वा जन्तुदूषितैः ।
आघ्रातैरंगसंस्पृष्टैर्दूषितैश्चैव नार्चयेत् ।।

भूमि पर गिरे हुये फूलों से, बिना खिले हुये, मलिन फूलों से, श्वास लगे हुए या बिल्ली आदि जानवरों से दूषित हुओं से, सूंघे हुये फूलों से, अंगों पर स्पर्श किये गये से और दूषित (खराब) फूलों से नहीं अर्चना (पूजा) करे ।

समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्व्रजेदधः ।।

ब्राह्मण, हवन करने के लिये एक-एक बित्ते लम्बी आम आदि की लकड़ियों (समिधा) को, फूल, कुशा आदिकों को आप लावें । शूद्रों के द्वारा लाये हुए और खरीद किये हुओं से कर्म करता हुआ नीचे (नरक को) चला जायगा ।

करानीतं परानीतं शूद्रानीतं तथैव च ।
एरण्डपत्रेणानीतं पत्रं पुष्पं विवर्जयेत् ।।

हाथ में लाये हूये, भगवत्-भागवत से विमुख के द्वारा लाये हुए, अवैष्णव से लाये हुए और उसी प्रकार रेंड़ के पत्ते पर लायें हुए तुलसी पत्र और फूल को त्याग देवे ।

गारुड़ पुराण में लिखा है—

तुलसीं प्राप्य यो नित्यं न करोति ममार्चनम् ।
तस्याहं तु न गृह्णामि पूजां च शतवार्षिकीम् ।।

जो प्रतिदिन तुलसी पाकर मेरी अर्चना-पूजा नहीं करता है, अतः मैं उसकी सैकड़ों वर्ष तक की हुई पूजा को भी नहीं ग्रहण करता हूँ ।

स्कान्द पुराण में लिखा है—

न विप्रसदृशं पात्रं न दानं सुरभीसमम् ।
न च गंगासमं तीर्थं न पत्रं तुलसीसमम् ।।

ब्राह्मण के समान पात्र नहीं है, दूध देने वाली गाय के समान दान नहीं है, गंगा के समान तीर्थ (पवित्र करने वाला) नहीं है और तुलसी के समान पत्र नहीं है ।

मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथा मुक्ताफलानि च ।
तुलसीपत्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।

मणि, सुवर्ण, फूल और वैसा ही मोती के फल के (गुच्छे), तुलसी-पत्र के दान के सोलहवाँ अंश (भाग) के योग्य नहीं हैं ।

अभिन्नपत्रां हरितां हृद्यमञ्जरिसंमिताम् ।
क्षीरोदार्णवसंभूतां तुलसीं हरयेऽर्पयेत् ।।

नहीं अलग-अलग पत्र वाली, हरित वर्ण वाली, मन को प्रिय लगने वाली मंजरी से युक्त रही हुई, क्षीर सागर से उत्पन्न हुई लक्ष्मी रूपा तुलसी को नारायण के लिए अर्पण करे ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में लिखा है—

न च्छिन्द्यात्तुलसीपत्रं द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् ।
यश्छिन्देत प्रमादेन तेन च्छिन्नं हरेः शिरः ।।

वैष्णव, कहीं द्वादशी के दिन तुलसी-पत्र को नहीं तोड़े, जो प्रमाद से (असावधानी से) तोड़ेगा, उसने नारायण के मस्तक को काट डाला ।

देवार्थे तुलसी छेद्या होमार्थे समिधस्तथा ।
इन्दुक्षयेन दुष्येत गवार्थे च तथा तृणम् ।।

जैसे नारायण के लिये तुलसी तोड़ने के योग्य है, वैसे होम (हवन) करने के लिए समिधाएँ तोड़ने के योग्य है । चन्द्रमा के क्षय होने से दूषित हो जायगा, गौ के लिये वैसे ही घास को लाना चाहिये ।

श्रीशस्याराधनार्थाय कुर्यात् पुष्पस्य सञ्चयम् ।
तुलसीबिल्वपत्राणि दूर्वां कौशेयमेव च ।।

लक्ष्मी-पति नारायण के आराधन के लिए फूल का संचय (संग्रह) करे; तुलसी, बेल के पत्ते, दूब और कुशा को भी इकट्ठा करे ।

विष्णुकान्तां मरुबकं करुबेलदलं तथा ।
उशीरं जातिकुसुमं कुन्दं चैव कुरंटकम् ।।
शमीचम्पकदम्बं च चूतपुष्पं च माधवीम् ।
पुन्नागं बकुलं नागं केसराशोकमल्लिकाः ।।
शतपत्रं च हारीतं करवीरं प्रियंगु च ।
नीलोत्पलं सप्तदलं सन्याबर्तं च कैतकम् ।।
घटजं स्थलपद्मं च सर्वाणि जलजानि च ।
तत्तत्कालोद्भवं पुष्पं गृहीत्वा गृहमाविशेत् ।।

विष्णु क्रान्ता [आस्फोटा, गिरिकर्णी, अपराजिता नाम वाली] को, मरुआ को तथा करुबेल के पत्ते को, खस को, चमेली के फूल को; कुन्द को और पीली कटैया

या पीली भिंडी (सहचरी) को, शमी (जाँट या मटर आदि की फली), चम्पा और कदम्ब, आम की मंजरी तथा माधवी को (वसन्ती को), पुन्नाग, बकुल (मौलसिरी), नागकेसर, अशोक, बेली के फूल और सौदल के कमल का फूल, हारीत (हर सिंगार) का फूल, लाल फूल वाले कनैर का फूल और मेंहदी का फूल, नील कमल, सप्तदल कमल एवं सन्ध्यावर्त (कोईं या भेंट) का फूल, केतकी का फूल, घटज (सूर्यमुखी) और स्थल पद्म को तथा सभी जल से उत्पन्न हुये फूलों को और उन-उन समयों में उत्पन्न हुये फूलों को लेकर घर में प्रवेश करे।

अरुणोदयबेलायां निर्माल्यं शल्यतां व्रजेत्।
प्रायस्तस्यां महाशल्यं घटिकामात्रयोगतः॥

अरुणोदय के समय भगवान का भोग, बर्छी मारने की समानता को प्राप्त करेगा। विशेष रूप से उस बेला में घड़ीमात्र के योग से बड़ी बर्छी मारने के समान होता है।

अतिशल्यं विजनीयात् कृतवज्रप्रहारवत्।
अरुणोदयबेलायां शल्यं न क्षमते हरिः॥

किये हुये बज्र प्रहार की भांति बहुत बड़े भाले मारने के समान जाने। नारायण, अरुणोदय के समय भाले मारने के समान को नहीं सहन करते।

घटिकाया अपि क्रान्तौ क्षुद्रपातकमावहेत्।
मुहूर्ते समतिक्रान्ते पूर्णपातकमुच्यते॥

एक घड़ी के भी बीत जाने पर छोटे पाप को बढ़ावेगा। मुहूर्त मात्र के लाँघ जाने पर पूर्ण पाप कहा जाता है।

अतिपातकमेव स्याद् घटिकानां चतुष्टये।
प्रहरे समतिकान्ते प्रायश्चित्तं न बिद्यते॥

चार घड़ी के बीत जाने पर अति पातक ही होगा; एक पहर के बीत जाने पर प्रायश्चित्त (पापों से छुटकारा) नहीं रह जाता है।

अब बत्तीस (३२) अपराध लिखे जाते हैं—

यानैर्वा पादुकैर्वाऽपि गमनं भगवद्गृहे।
दीपोत्सवे वाद्यसेवा अप्रशस्ता मदग्रतः॥

सवारी पर चढ़कर अथवा खड़ाऊँ पहनकर भगवान के मन्दिर में जाना। मुझ परमात्मा के आगे दीप-उत्सव में बाजाओं का बजाना रूप सेवा नहीं प्रशंसावाली है।

उच्छिष्टे चैकवासे च भगवद्वन्दनादिकम् ।
एकहस्तप्रणामं च यत्सुप्तेऽस्मिन् प्रदक्षिणम् ॥

जूठे और एक वस्त्र पहने रहने पर भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम आदि करना भी अपराध है तथा एक हाथ से प्रणाम करना एवं जिन भगवान् के सो जाने पर इनके विषय में प्रदक्षिणा करना ।

यत्पुरो दण्डपातश्च यच्च ताम्बूलमग्रतः ।
पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कवन्दनम् ॥

और जिन परमात्मा के सामने अर्थात् आगे में दण्ड प्रणाम करना एवं जिनके आगे पान खाना तथा आगे पावों को पसारना और पलँग पर बैठे हुये प्रणाम करना ।

शयनं भक्षणं चैव मिथ्याभाषणमेव च ।
उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनं चैव विग्रहः ॥

भगवान् के सामने सो जाना और खाना तथा झूठ बोलना भी ऊँचे स्वर से बोलना, परस्पर गप-शप करना, रोना और झगड़ा-लड़ाई करना ।

निग्रहोऽनुग्रहश्चैवमिष्टञ्च क्रूरभाषणम् ।
पृष्ठे कृत्वाऽऽसनं चैव परेषामभिवादनम् ॥

भगवान् के सामने किसी को दण्ड देना और किसी पर अनुग्रह करना, प्रिय और कठोर वचन बोलना, भगवान् के सामने पीठ करके बैठना और दूसरों को नमस्कार करना ।

गुरोर्मौनं निजस्तोत्रं देवब्राह्मणनिन्दनम् ।
कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥

भगवत्सन्निधि में गुरु की स्तुति करने में मौन रहना, अपनी बड़ाई करना, देवता-ब्राह्मण की निन्दा करना, कम्बल ओढ़ना और दूसरों की निन्दा करना तथा दूसरों की स्तुति (बड़ाई) करना ।

अशीलभाषणं चैव अधोवायुविमोचनम् ।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ॥

निर्दय रूप से बोलना और नीचे वायु को छोड़ना (पादना) और उन-उन समयों में उत्पन्न हुए फल आदिकों का भगवान् को अर्पण न करना ।

अपराधा इमे विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः ।
यत्नतो वर्जनीयास्ते विष्णुपूजनतत्परैः ॥

विष्णु के (विषय में) ये बत्तीस अपराध कहे गये हैं। विष्णु के पूजन में तत्पर रहने वालों को उन्हें उपाय से त्याग देने चाहिये।

अब भगवान् के आराधन में आवरण का प्रकार लिखा जाता है; पाराशर स्मृति में कहा है—

श्वानवायसचाण्डालदृष्टिदोषं परित्यजेत्।
प्रपन्नपरमैकान्तभोजने पाककर्मसु ॥

श्रेष्ठ एकान्त अर्थात् एकमात्र भगवान् के शरणापन्न चेतन के भोजन काल में और पाक कर्मों में (रसोई बनाने में) कुत्ते-कौवे-चाण्डाल की दृष्टि के दोष को परित्याग करना चाहिये।

चाण्डालाः शाक्तिकाः शैवास्तथा भैरवपूजकाः।
येऽप्यन्यदेवताभक्तास्तेषां दृष्टिं विवर्जयेत् ॥

चाण्डाल, शक्ति के उपासक, शिव के उपासक तथा भैरव-पूजक गण और जो दूसरे देवताओं के भक्त भी होवें, उनकी दृष्टि को विशेष रूप से वर्जित करे।

अत्युष्णमतिरूक्षं च भुक्तं पर्युषितं तथा।
आघ्रातमितरैर्दृष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

बहुत गरम और बहुत रूखा (बिना घी, दूध का) भोजन, खाया हुआ तथा बासी अन्न, सूंघा हुआ और दूसरों से देखे हुए को प्रयत्न पूर्वक विशेष रूप से वर्जित करे।

विष्णोर्नैवेद्यकालेषु चैलावरणमाचरेत्।
त्यक्त्वावर्णं पचेदन्नं स मूढो नरकं व्रजेत् ॥

भगवान् विष्णु के नैवेद्य (भोग) समयों में वस्त्र का आवरण (पर्दा) करे। आवरण (पर्दा) को त्याग करके अन्न पकावे अर्थात् रसोई करे तो, वह मूढ़ (अज्ञानी) नरक को जायगा।

आवर्णं यः परित्यज्य नैवेद्यं कुरुते यदि।
स चाण्डालो महापापी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

जो आवरण (पर्दा) को परित्याग करके यदि नैवेद्य (भोग) करता है अर्थात् बनाता है तो, वह महापापी चाण्डाल रौरव नरक को जायगा।

जैनबौद्धादिकैः सम्यक्श्वानमार्जारवायसैः।
देवतान्तरभक्तानां दृष्टिदोषं परित्यजेत् ॥

जैन-बौद्ध आदिकों से, कुत्ते-बिल्ली-कौवों से भलीभाँति और भगवान् को छोड़कर दूसरे देवताओं के भक्तों की दृष्टि के दोष को परित्याग करे अर्थात् इनको न देखावे।

नैवेद्यपाककाले च भोजने च विशेषतः।
असद्दृष्टिं परिहरेदच्युतस्य निवेदने॥

नारायण के निवेदन काल में और नैवेद्य (भोग) तथा पाक (रसोई बनाने) के समय तथा विशेष रूप से भोजन में नीचों की दृष्टि में परित्याग करे अर्थात् उपर्युक्त कालों में इनकी दृष्टि नहीं पड़ने पावे।

काकं दृष्ट्वा प्रपन्नश्च नाश्नीयाल्लोभतोऽपि वा।
अवैष्णवानां दृष्टं च भोजनं वैष्णवस्त्यजेत्॥

और प्रपन्न श्रीवैष्णव, लोभ से भी कौवे को देखकर (दिखाकर) नहीं भोजन करे। श्रीवैष्णव, अवैष्णवों के देखे हुए भोजन को भी त्याग देवे।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

एकशय्यासनं पंक्ति भाण्डपक्वान्नमिश्रितम्।
यजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम्॥
नवधा संकरप्रोक्तं न कुर्याच्चाधमैः सह।
वर्जयेद्विधवापाकमनर्चककृतं तथा॥

एक पलँग पर, एक आसन पर, एक पंक्ति में, एक पात्र (बर्तन) में पकाये हुये अन्न से मिले हुए को, पूजन और अध्यापन (अध्ययन कराना), जाति-सम्बन्ध और उसी प्रकार एक साथ भोजन करना, हाथ के सहित नीचों के साथ भोजन नहीं करे—नव प्रकार के कहे गये हैं, विधवा स्त्री के पाक (रसोई) को तथा भगवान् की पूजा नहीं करने वाले के किये हुये पाक को त्याग करे।

अधमान्नं तथा सम्यग्वर्जयेत् सर्वकर्मसु।

तथा नीचों के अन्न को सब कर्मों में भली-भाँति त्याग करे।

पञ्चसंस्काररहितः शिखाकौपीनवर्जितः।
वैष्णवाचाररहितः सोऽनर्चक इति स्मृतः॥

पाँच संस्कारों से रहित, शिखा-कौपीन से वर्जित और वैष्णव के आचरण से रहित अर्चक (पूजक) नहीं है—ऐसा कहा गया है।

महाभारत मोक्ष धर्म में लिखा है—

न नग्नामीक्षते नारीं न नग्नान् पुरुषानपि ।
मैथुनं शयनं गुप्तमाहारं च समाचरेत् ॥

नंगी स्त्री को नहीं देखना चाहिए और नंगे पुरुषों को भी नहीं देखना चाहिये । स्त्री-भोग, शयन करना और भोजन गुप्त रूप से करने चाहिये ।

सायंप्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
नान्तराभोजनं दृष्ट्वा उपवासं तदा चरेत् ॥

सन्ध्या और प्रातःकाल, मनुष्यों का भोजन देवताओं का बनाया हुआ है । नहीं तो, मध्य के भोजन को देखकर तब उपवास करे ।

पाखण्डपतिताशुद्धविकर्मस्थानवेक्षितम् ।
अचक्रांकैरमर्यादैर्वैष्णवैरपि नेक्षितम् ॥

पाखण्डी, पतित, अपवित्र और शास्त्र विरुद्ध कर्मों में स्थित रहने वालों से नहीं देखा हुआ भोजन होना चाहिये तथा चक्राङ्कन से रहित और मर्यादा से रहित वैष्णवों से भी नहीं देखा हुआ भोजन होना चाहिये ।

हारीत स्मृति में लिखा है—

पैशाचिकानां यक्षाणां शाक्तानां लिङ्गधारिणाम् ।
द्वादशीविमुखानां च दृष्टिदोषं विवर्जयेत् ॥

भूत-पिशाचों की पूजा करने वालों की, यक्षों की पूजा करने वालों की, शक्ति के उपासकों की, लिंगधारियों की और द्वादशी-विमुख रहने वालों की दृष्टि के दोष को वर्जित करे ।

अवैष्णवानां दृष्टिः स्यात् पाकपात्रे तथा जले ।
तत्पाकं तु परित्यज्य पात्रशुद्धिं च कारयेत् ॥

अवैष्णवों की दृष्टि (नजर) रसोई के बर्तन पर तथा जल पर होवे तो, उस रसोई को परित्याग करके पात्र (बर्तन) की शुद्धि भी करवावे ।

ब्रह्मघ्नोऽथ सुरापी च शूद्रश्चाण्डालपालकः ।
अचक्रांकी च म्लेच्छश्च सप्तभ्यो गोपयेन्मुने ॥

ब्रह्महत्यारा अथवा मदिरा पीने वाला, शूद्र, चाण्डाल का पालन करने वाला और पञ्च संस्कार से रहित एवं मुसलमान होवें । हे मुने ! सातों से रक्षा करे अर्थात् इनकी दृष्टि रसोई आदि पर नहीं पड़नी चाहिये ।

नारद पाञ्चरात्र की सुदर्शन संहिता में लिखा है—

नीलाद्रौ चित्रकूटे च व्रजे शेषे हिमालये ।
अन्तर्वेद्यां तथा राजन् दृष्टिदोषो न विद्यते ।।

हे राजन् ! नीलाद्रि अर्थात् श्री जगन्नाथ पुरी में, चित्रकूट में, ८४ कोश व्रज में, शेषाचल पर्वत पर और हिमालय पर्वत पर तथा अंतर्वेदी (प्रयाग से लेकर काशी तक) में दृष्टि का दोष नहीं रहता है ।

'वृद्ध वासिष्ठ' नामक ग्रंथ में लिखा है—

पूजानैवेद्यकालेषु यागद्रव्याण्यशेषतः ।
तिरोधाय च वस्त्रेण अलक्ष्येत्प्राकृतैर्यथा ।।

पूजा और नैवेद्य (राजभोग आदि) कालों में सम्पूर्ण रूप से याग (भगवद् आराधन) के द्रव्यों को वस्त्र से ढक करके अर्थात् पर्दा करके ही रखना चाहिए। प्राकृत (अवैष्णव) लोगों से जैसे नहीं देखा जावे ।

नारद पाञ्चरात्र की जय संहिता में कहा है—

पिदधीत तथा क्षेत्रमायागात्पाकभूमयः ।
वस्त्रपर्णकुशाद्यैर्वा यथाऽलक्ष्यमवैष्णवैः ।।

यज्ञ पर्यन्त रसोई की भूमियाँ (जगहें) तथा स्थान को वस्त्र-पत्ते-कुश आदिकों से ही आच्छादन करे; जैसे अवैष्णवों से नहीं देखने के योग्य होवे ।

वृद्ध पाराशर स्मृति में कहा है—

विष्णोरिज्यां स वै कुर्याद्योऽवनिं वसनादिभिः ।
पूज्यते हरिरव्यक्तस्तत्र लक्ष्म्या स मोदते ।।

वही विष्णु की पूजा करे, जो वस्त्र आदिकों से भूमि को आच्छादन करे। वहाँ पर लक्ष्मी सहित वह अव्यक्त [प्रत्यक्ष-अनुमान से व्यक्त (प्रकट) नहीं होने वाले] नारायण पूजित होते हैं और आनन्द पाते हैं ।

विप्रो वा वैष्णवो वा स्यादनु पाकादि कर्मसु ।
तिरस्कुर्याद्विधानेन नान्यथा हरिरिज्यते ।।

ब्राह्मण हो या वैष्णव होवे, पाक (रसोई) आदि के कामों में विधानपूर्वक पर्दा करे; अन्यथा नारायण नहीं पूजित होते हैं ।

यागभूमौ च यागान्नपाकयागादिकर्मसु ।
तिरस्कुर्याद्ध्रुवं तेषां नान्यथा शुद्धिमाप्नुयात् ।।

पूजा की भूमि में और पूजा के अन्नों को रसोई पूजा आदि कामों में उनकी भूमि को पर्दा करे, नहीं तो शुद्धि (पवित्रता) को नहीं प्राप्त करेगा।

अनाच्छाद्य तथा क्षेत्रं यागादौ यः करोति सः।
सिद्धिं नैव समाप्नोति प्रत्युत प्रच्युतो भवेत्॥

जो पूजा आदि में उस प्रकार स्थान को बिना पर्दा करके करता है, वह सिद्धि को नहीं प्राप्त करता है, बल्कि अपने स्वरूप से च्युत हो जायगा।

इसके अनन्तर भगवान् के आराधन में वस्त्र-धारण का क्रम लिखा जाता है—

छिन्नं वा संधितं दग्धमाविकं च न दुष्यति।
अविको न तु वस्त्रेण मानवः श्राद्धमाचरेत्॥

रेशमी वस्त्र, फटा हुआ (कटा हुआ) या सीया हुआ और जला हुआ नहीं दूषित होता है। परन्तु, अशुद्ध वस्त्र वाला मनुष्य, अशुद्ध वस्त्र से श्राद्ध को नहीं करे।

गयाश्राद्धसमं प्रोक्तं पितृभ्यो दत्तमक्षयम्॥

पितृ लोगों को दिया हुआ विनाश-रहित गया श्राद्ध के समान कहा गया है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

न कुर्यात्सन्धितं वस्त्रं देवकर्मणि भूमिप।
न दग्धं न च वै छिन्नं परकीयं न धारयेत्॥

हे राजन्! देव कर्म में सिये हुये वस्त्र को धारण नहीं करे; न जले हुये को और न फटे-चिटे को तथा दूसरे के वस्त्र को नहीं धारण करे।

काकविष्ठासमायुक्तं नाविधूतं शुचिर्भवेत्।
रजकादाहृतं वस्त्रं तद्वस्त्रं न भवेच्छुचि॥

कौवे की विष्ठा से युक्त वस्त्र, बिना धोया हुआ पवित्र नहीं होगा। धोबी से लाया हुआ वस्त्र, वह वस्त्र पवित्र नहीं होता।

कटिस्पृष्टं तु यद्वस्त्रं पुरीषं येन धारितम्।
विण्मूत्रमैथुने यद्वै तद्वस्त्रं न भवेच्छुचि॥

जो वस्त्र, कटि (कमर) में स्पर्श किया हो और जिस वस्त्र से मल-मूत्र किया हुआ है और जिस वस्त्र से मल, मूत्र, स्त्री के साथ संभोग किया हो, वह वस्त्र पवित्र नहीं होगा।

आविकं तु सदा वस्त्रं पवित्रं राजसत्तम ।
पितृदेवमनुष्याणां क्रियास्वेतत्प्रशस्यते ।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ ! परन्तु, सदा पवित्र रेशमी या ऊनी वस्त्र है; पितृ-देव-मनुष्यों की क्रियाओं में यह प्रशंसा युक्त श्रेष्ठ माना गया है ।

धौताधौतं तथा दग्धं सन्धितं रजसाप्लुतम् ।
शुक्रमूत्ररक्तलिप्तं तथापि परमं शुचि ।।

रेशमी वस्त्र धोया हुआ, नहीं धोया हुआ तथा जला हुआ, सिया हुआ, धूली से लिपटा हुआ, वीर्य-मूत्र-रक्त से युक्त हो, तथापि परम पवित्र है ।

अग्निराविकवस्त्रं तु ब्राह्मणश्च तथा कुशाः ।
चतुर्णां न कृतो दोषो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।

आग और रेशम वस्त्र एवं ब्राह्मण तथा कुश—चारों का किया हुआ दोष परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा नहीं माना गया है ।

हरिचर्या पाककाले धार्यं पट्टाम्बरं सदा ।
तस्याभावे आविकं तदभावे वस्त्रमेव हि ।।

नारायण की सेवा-पूजा में और रसोई बनाने के समय सदा पीताम्बर धारण करना चाहिये, उसके अभाव में रेशमी वस्त्र और उसके अभाव में सूती वस्त्र को ही निश्चय धारण करना चाहिये ।

मम्मालये सदा धार्यं पट्टकूलं सदा बुधैः ।
विष्णोः पूजनकाले च पाककाले विशेषतः ।।

सदा ज्ञानी लोगों को मुझ विष्णु के मन्दिर में पूजा के समय और विशेष रूप से रसोई करने के समय पीताम्बर को सदा धारण करना चाहिये ।

विष्णोरर्चनकाले तु धार्यं पट्टं प्रयत्नतः ।

विष्णु के पूजनकाल में तो प्रयत्नपूर्वक पीताम्बर धारण करना चाहिये ।

ऊर्णा शुद्धयति वातेन भूमिः शुद्धयति लेपनैः ।
ब्राह्मणः कर्मणा शुद्धयेज्ज्ञानैः शुद्धयन्त योगिनः ।।

ऊनी वस्त्र, पवन से शुद्ध होता है, पृथ्वी, लीपने से शुद्ध होती है, ब्राह्मण, कर्म से शुद्ध होता है और योगी लोग, ज्ञानों से शुद्ध होते हैं ।

पांचरात्र की भारद्वाज संहिता में लिखा है—

कौपीनं कटिसूत्रं च वस्त्रयुग्मं च धारयेत् ।
न कन्थां जीर्णवासो वा केशवस्त्रं न धारयेत् ।।

कौपीन को और कटि सूत्र को तथा युगल वस्त्र (धोती-चादर) को धारण करे। गुदड़ी को या पुराने फटे-चिटे वस्त्र नहीं पहिने और केश के वस्त्र को नहीं धारण करे।

आविकं च सदा वस्त्रं पवित्रं राजसत्तम।
विण्मूत्रमैथुनं येन कारितं न भवेच्छुचि॥

हे श्रेष्ठ राजन् ! रेशमी वस्त्र सदा पवित्र है, परन्तु जिससे मल-मूत्र-स्त्री भोग किया हुआ पवित्र नहीं होगा।

एककच्छो द्विकच्छो वा द्विशिखः शिखयोज्झितः।
कंबलावरणश्चैव पञ्चैते नग्नकाः स्मृताः॥

एक कच्छा वाला (केवल कौपीनमात्र लगाया हुआ) या दो कच्छा वाला (कोपीन-कटि वस्त्रमात्र पहिना हुआ), दो शिखा वाला, शिखा से रहित और केवल कंबलमात्र का आवरण किया हुआ—ये पांचों नग्न कहे गये हैं।

विवरण—उक्त श्लोक में "कंबलावरणः" के विषय में ग्रंथकार ने काले कम्बल के ओढ़ने का निषेध किया है, सभी कम्बलों का नहीं—यह ग्रंथ-प्रणेता का तात्पर्य है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

तामसं वस्त्रमेकं तु राजसं वसनद्वयम्।
कौपीनसहित यत्तु सात्त्विकं मुनिभिः स्मृतम्॥

एक वस्त्र को तामस और दो वस्त्र को राजस एवं जो कौपीन के सहित वस्त्र है, मुनियों ने उसे सात्विक कहा है।

कौपीनं कटिसूत्रं च वस्त्रस्योपरिबन्धनम्।
यावन्न धारयेद्विप्रस्तावच्छूद्रो न संशयः॥

कटि सूत्र को और कोपीन को तथा वस्त्र के ऊपर बन्धन को ब्राह्मण जब तक नहीं धारण करे, तब तक शूद्र है; सन्देह नहीं है।

कौपीनेन बिना यस्तु कर्म कुर्याच्च वैदिकम्।
स वै नग्न इति ख्यातः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥

परन्तु, जो कौपीन के बिना वैदिक कर्म को करे, वही नग्न (नंगा) है—ऐसा कहा गया है और सब कर्मों से बहिष्कृत अर्थात् बाहर है।

कौपीनं कटिसूत्रं च वस्त्रयुग्मं च धारयेत्।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रांस्तु सच्छिद्रानेव देशिकः॥

शिष्यों को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु, कटि सूत्र और कोपीन तथा युगल वस्त्र (धोती और चादर) को धारण करें एवं मध्य में छिद्रों के सहित ही बारह ऊर्ध्व पुण्ड्रों को धारण करें।

ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्।
अहतं तद्विजानीयाद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि।।

जिसने थोड़े धोये हुये नवीन सफेद दश सूत्रों के सहित कटि-सूत्र को नहीं धारण किया है, उसको देव और पितृ सम्बन्धि कर्म में मुर्दे के समान जानना चाहिये।

पञ्चभिः सप्तभिर्वापि गुणैः कार्पासनिर्मितैः।
इदं नव्यमिदं प्रोक्तं कटिसूत्रस्य लक्षणम्।।

कपास की रूई से बनाये हुये पाँच या सात गुणों (दोहरे धागों) से युक्त यह नवीन कटि-सूत्र है—ऐसा यह कटि-सूत्र का लक्षण कहा गया है।

अन्यत्र लिखा है—

कर्णे पुष्पं कटौ सूत्रं वेणीं शिरसि धारयेत्।
तावद् भवति चाण्डालो यावद् गङ्गां न पश्यति।।

कान पर फूल को, कमर में सूत को और मस्तक में स्त्रियों की भाँति तीन लरी सर्पाकार चोटी को धारण करे तो, तब तक चाण्डाल होता है, जब तक गंगा को नहीं देखता है।—ऐसा कितने बोलते हैं, परन्तु वह कहना केवल सूत धारण के निषेध के लिये है, कटि-सूत्र का नहीं।

इसके अनन्तर भगवान् के मन्दिर में दीपदान का माहात्म्य लिखा जाता है। नृसिंह पुराण में लिखा है—

घृतेन चैव तैलेन दीपं यो ज्वालयेन्नरः।
विष्णोर्वेश्मनि भक्त्या वै तस्य पुण्यमनन्तकम्।।

जो मनुष्य, विष्णु के मन्दिर में भक्ति अर्थात् प्रीति से ही घी से अथवा तैल से दीप को जलावे तो, उसका पुण्य अनन्त कहा है।

विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः।
ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोके महीयते।।

सब पाप को त्याग कर सहस्रों सूर्य के समान प्रकाशमान होकर प्रकाश से युक्त विमान के द्वारा विष्णु लोक (वैकुण्ठ) में पूजित होता है।

उसी पुराण में उमा के प्रति रुद्र का वाक्य है—

यस्तु विष्णुगृहे दीपं दत्तं दृष्ट्वाऽनुमोदते ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किं पुनर्दीपदायकः ।।

और जो विष्णु के मन्दिर में दिये हुये दीप को देखकर आनन्द पाता है, तो वह भी उस फल को पाता है फिर दीप देने वाला क्यों नहीं पायगा।

घृताभावे तु तैलं हि तैलाभावे तदर्थदः ।
अर्थाभावे च तत्पात्रं यो दद्यात्सोऽपि दीपदः ।।

और घी के अभाव रहने पर तैल ही देता है और तैल के अभाव रहने पर उसका मूल्य (कीमत) देने वाला होता है तथा मूल्य के अभाव होने पर उस पात्र (दीप) को जो देवे, तो वह भी दीप को देने वाला है।

संमार्जनशतं पुण्यं सहस्रमनुलेपनम् ।
माला शतसहस्रं तु अनन्तं दीप उच्यते ।।

विष्णु-मन्दिर में झाड़ू देने का सौ गुणा पुण्य है, हजार गुणा लीपने का और माला बनाकर देने का लाख गुणा और अनन्त गुणा पुण्य दीप का कहा जाता है।

इसके अनन्तर भगवान् के मन्दिर में झाड़ू लगाने का माहात्म्य लिखा जाता है—

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में लिखा है—

यस्तु चायतने विष्णोः कुरुते मार्जनक्रियाम् ।
स पांसुव्याप्तदेहस्तु सर्वपापं व्यपोहति ।।

और फिर जो विष्णु के मन्दिर में झाड़ू लगाने के काम को करता है, फिर धूली से व्याप्त वह देहधारी सब पापों को नाश करता है।

अहन्यहनि यत्पापं कुरुते द्विजसत्तम ।
गोचर्ममात्रसंमार्जे हन्ति तत्केशवालये ।।

हे ब्राह्मणोत्तम ! रोज-रोज जिस पाप को करता है, उसको केशव भगवान् के मन्दिर मे गो का चमड़ामात्र अर्थात् गो का चमड़ा जितना लम्बा-चौड़ा होता है, उतनी जगह में झाड़ू देने से सब पापों को नाश कर देता है।

यावती पांसुकणिका मार्जने केशवालये ।
वर्षाणि विद्धि तावन्ति निवृत्य रमते नरः ।।

केशव भगवान् के मन्दिर में झाड़ू लगाने पर जितनी धूली की कणिकाएं (परमाणुएं) रहती हैं, उतने वर्षों तक जानो—मनुष्य तारतम्य से छूटकर वैकुण्ठ में रमण करता है।

उपर्युक्त पुराण में ही अपने किङ्करों के प्रति यम का वाक्य है—

उपलेपनकर्तारः संमार्जनकराश्च ये।
विष्णवालये परित्याज्यस्तेषां त्रिपुरुषं कुलम्॥

जो लोग विष्णु-मन्दिर में लीपा-पोती करने वाले हैं और झाड़ू-बहाड़ू करने वाले हैं, उनके तीन पुरुष वंश पर्यन्त परित्याग करने चाहिये।

अग्निष्टोमं तु पक्षेण वाजपेयं तु मासतः।
संवत्सरेणाश्वमेधं मार्जने फलमुच्यते॥

अग्निष्टोम यज्ञ को पक्ष से और वाजपेय को मास से, तथा अश्वमेध को संवत्सर से विष्णु-मन्दिर में झाड़ू लगाने में फल कहा गया हे।

इसके अनन्तर भगवान् के आगे गीत-नृत्य आदिकों का माहात्म्य लिखा जाता है—

नारद पांचरात्र में लिखा है —

श्रीपादमस्तकं भक्त्या पश्यतः पुरुषोत्तमम्।
महापापानि नश्यन्ति किं पुनस्तूपपातकम्॥

प्रेम से पुरुषोत्तम के श्रीचरण और मस्तक देखने वाले के बड़े-बड़े पाप सब नाश हो जाते हैं; फिर छोटे पाप का तो कहना ही क्या है?

विष्णोर्गानं च नृत्यं च नटनं च तथैव च।
सदा ब्राह्मणजातीनां कर्त्तव्यं नित्यकर्मवत्॥

ब्राह्मण जातियों का नित्य कर्म की भांति सदा विष्णु सम्बन्धि गान करना और नृत्य करना तथा कलाओं को दिखाते हुए नाचना भी उसी प्रकार कर्त्तव्य है।

नृत्यतां श्रीपतेरग्रे करसंस्फोटनादिभिः।
उड्डीयन्ते शरीरस्था महापातकपक्षिणः॥

लक्ष्मी-पति नारायण के आगे हाथों को ऊपर उठाने आदिकों के द्वारा नाचने वालों के शरीर में रहे हुये बड़े-बड़े पाप रूप पक्षीगण उड़ जाते हैं।

नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमं युगम्।
स्मरणात्कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यते परमं पदम्॥

हे बड़े भाग्यशालिन् ! कलिकाल के समान युग नहीं है, नहीं है; विष्णु के स्मरण-कीर्तनमात्र से श्रेष्ठ स्थान त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ को पा जाता है ।

लब्ध्वा तु मानुषं देहं पञ्चभूतसमन्वितम् ।
मयि भक्तिं न कुर्वन्ति ततो दुःखतरं नु किम् ।।

(इति वाराहपुराणे भगवद्वचनम् ।)

पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश रूप पाँचों भूतों से युक्त मनुष्य के देह को पाकर मुझमें प्रेम नहीं करते हैं; उससे दुःख अधिक और क्या है ?—यह वाराह पुराण में भगवान् का वचन है ।

वैसा ही मनु स्मृति में भगवान् का वचन है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।

हे नारद ! मैं वैकुण्ठ में नहीं वास करता हूँ और योगियों के हृदय में नहीं । जहाँ मेरे भक्त लोग गान करते हैं, वहाँ रहता हूँ ।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में नारद का वचन है—

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रति श्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ।।

नारायण के उन नामों को वाणी से छोड़ना अर्थात् बारम्बार बोलना मनुष्यों के पापों को लूटने वाले हैं, जिसमें नारायण की कीर्ति के विरुद्ध नहीं बँधे वाले होने पर भी अनन्त भगवान् के यश से युक्त रहे हुये नाम हैं; जिन नामों को साधु लोग अर्थात् भक्त लोग सुनते हैं गाते हैं और बारम्बार कहते हैं ।

श्रीमद्भागवत के अजामिल उपाख्यान में भगवत्पार्षदों ने यमदूतों से कहा है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।

संकेत (इशारा) पूर्वक या परिहासपूर्वक, स्तुतिपूर्वक अथवा तिरस्कार-निरादरपूर्वक ही माया-रहित नारायण का नाम लेना सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाला जानो ।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ।।

पतित (सबकी दृष्टि से गिरा हुआ), धोखा देने वाला, जाति या समाज से च्युत रहा हुआ, सर्प से डँसा हुआ, तापत्रय से तपा हुआ, मिथ्याभाषी पुरुष 'हरि'—इस नाम को विवशता के साथ कहता है, तो, नरक-यातना के योग्य नहीं होता है ।

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ।।
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ।।

चोरी करने वाला हो, मदिरा पीने वाला हो, मित्र से द्रोह करने वाला हो, ब्रह्म हत्यारा हो, गुरु की शय्या पर जाने वाला हो, स्त्री-राजा-पिता-गौ का मारने वाला होवे और जो दूसरे पातकी हों, सब पाप वालों के भी यही पापों से छूटने का उपाय है कि विष्णु के नामों का उच्चारण करना क्योंकि, तद्विषया बुद्धि वाला है ।

वहीं नारद जी का वाक्य है—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इति मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ।।

तीर्थ पादः = तीर्थं पादे यस्य स तीर्थपादः । प्रियश्रवाः = वेदादिषु । प्रियं श्रवः—श्रवणं यस्य स प्रियश्रवाः ।

तीर्थ हैं पाँवों में जिसके—ऐसे पवित्र चरण वाले, वेद आदिकों में प्रिय है श्रवण जिनका—ऐसे प्रिय श्रवण वाले नारायण, अपने पराक्रमों को मुझ गाने वाले के बुलाये हुये ऐसे शीघ्र अन्तःकरण में दर्शन प्राप्त होता है ।

गृहेष्वाविशतां वाऽपि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ।।

घरों में प्रवेश करने वाले अथवा कल्याण कर्म करने वाले पहरों मेरे विषय में कथा-वार्ता के द्वारा बिताने वाले मनुष्यों के संसार-बन्धन के लिये घर नहीं माने गये हैं ।

सातवें स्कन्ध में श्री शुकदेव जी का वाक्य है—

जिह्वां लब्ध्वाऽपि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ।
लब्ध्वाऽपि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः ।।

जो जीभ को पाकर भी कीर्तन करने के योग्य विष्णु को नहीं कीर्तन करे, वह दुष्ट बुद्धि वाला, मोक्ष (संसार से छूटने) की निसेनी (सीढ़ी को) पाकर भी नहीं चढ़ता है।

ग्यारहवें स्कन्ध में करपात्री (भिक्षु) का वाक्य है—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभाजिनः।
कीर्तनेनैव कृष्णस्य सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥

गुण जानने वाले, सार ग्रहण करने वाले आर्य लोग कलियुग का आदर करते हैं। (क्योंकि) कृष्ण के कीर्तन से ही सब अपना मनोरथ प्राप्त किया है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

हे राजन् ! दोषों के निधि (खजाना) रूप कलि का एक बड़ा गुण है—कृष्ण के कीर्तन से ही संसार बन्धन से छूटा हुआ परमात्मा को प्राप्त करेगा।

कृते यद्ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजते मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

सत्य युग में जिन विष्णु को ध्यान करते हैं, त्रेता में यज्ञों के द्वारा पूजा करते हैं, द्वापर में सेवा-परिचर्या में प्राप्त करते हैं, कलियुग में वह नारायण के कीर्तन से प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर भगवान् के चरणामृत का माहात्म्य लिखा जाता है—

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

त्रिषु लोकेषु यत्तीर्थं तेषु स्थानेषु यत्फलम्।
विष्णुपादोदकं मूर्ध्ना धारयेत्सर्वमाप्नुयात् ॥

तीनों लोकों में जितने तीर्थ हैं, उनमें स्नानों के करने पर जो फल मिलता है; विष्णु के चरणोदक को मस्तक से धारण करे तो, सब फल मिल जायँगे।

मानवो यस्तु गङ्गायां स्नानं पानं समाचरेत्।
तस्य यादृग्भवेत्पुण्यं तादृक्पादाम्बुधारणात् ॥

और जो मनुष्य गंगा में स्नान और जलपान करे, उसका जितना पुण्य होवे, उतना चरणोदक के मस्तक पर धारण करने से हो जाता है।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि प्रयागं पुष्करादिकम्।
तत्पादयुग्मे कृष्णस्य तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः ॥

पृथ्वी में जो-जो तीर्थ प्रयाग-पुष्कर आदि हैं; वे सब तीर्थ कृष्ण के उन दोनों चरणों में सदा रहा करते हैं।

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ।
पादोदकं च निर्माल्यं यस्य मूर्ध्नि स वैष्णवः ।।

हृदय में नारायण का रूप, मुख में नाम, पेट में नैवेद्य, चरणोदक और निर्माल्य (वस्त्र-माला आदि) जिसके मस्तक पर रहते हैं, वह वैष्णव है।

भागवत में लिखा है—

पादोदकस्य माहात्म्यं जानात्येव हि शङ्करः ।
विष्णुपादोदकं पीत्वा शुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात् ।।

शंकर ही नारायण के चरणोदक के माहात्म्य को निश्चय जानते हैं; विष्णु के चरणोदक को पीकर तुरन्त शुद्धि को प्राप्त करता है।

स्नानपादोदकं वाऽपि पिबञ्छिरसि धारयेत् ।
पुण्यपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ।।

भगवान् के स्नान के चरणोदक को भी पीता हुआ सिर पर धारण करे— ऐसा करने से पुण्य-पाप से छूटा हुआ वैष्णवी गति को प्राप्त करेगा।

विष्णुगात्रेण संस्पृष्टं पत्रं वा पुष्पमेव वा ।
शिरसा धारयेद्यो वै स याति हरिमञ्जसा ।।

जो निश्चय विष्णु के शरीर से स्पर्श किये हुये तुलसी पत्र या फूल को ही मस्तक से धारण करे, वह निश्चय नारायण को प्राप्त करता है।

पादोदकं पिबेन्नित्यं चक्राङ्कितशिलां हरेः ।
प्रक्षालयति तत्तोयं ब्रह्महत्यादिकं हरेत् ।।

नारायण की चक्र से चिह्नित शालग्राम मूर्त्ति के चरणोदक को प्रतिदिन पान करे तो, वह चरणोदक का जल ब्रह्महत्या आदिक को नाश कर देता है और हरण कर लेता है।

पीते पादोदके विष्णोर्वैष्णवानां विशेषतः ।
तत्र नाचमनं कुर्याद्यथा सोमे द्विजोत्तमैः ।।

विष्णु के चरणोदक के पी लेने पर विशेष रूप से वैष्णवों को वहाँ आचमन नहीं करना चाहिये, जैसे ब्राह्मणोत्तमों के द्वारा यज्ञ में सोमलता के रस को पीने पर आचमन नहीं किया जाता है।

तीर्थप्रसादस्वीकारानन्तरं वैष्णवो द्विजः।
न हस्तक्षालनं कुर्यान्न तत्राचमनक्रिया ॥

द्विज (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) वैष्णव, भगवान् के तीर्थ-प्रसाद स्वीकार के अनन्तर हाथ का धोना न करै और न उसमें आचमन की क्रिया की जाती है।

पद्म पुराण में लिखा है—

संसारमलपंकस्य विष्णुपादोदकं बिना।
प्रक्षालनं न पश्यामि कल्पकोटिशतैरपि ॥

संसार मल रूप कीचड़ का विष्णु के चरणोदक के बिना धोने वाला सौ करोड़ कल्प तक भी नहीं देखता हूँ।

विष्णुश्रीपादतीर्थं हि कोटिजन्माघनाशनम्।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात् ॥

विष्णु के श्रीचरण का तीर्थ ही करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने वाला है, किन्तु, उसी को पृथ्वी पर एक भी बिन्दु के गिराने से आठ गुणा पाप होता है।

परमाणुसमं तीर्थं यावत्संपतते भुवि।
तावद्वर्षसहस्राणि पतन्ति नरके नराः ॥

जितने परमाणु के समान तीर्थ पृथ्वी पर पड़ते हैं, उतने हजार वर्षों तक मनुष्य नरक में पड़े रहते हैं।

वस्त्रं च द्विगुणीकृत्य पाणौ पाणिं निवेशयेत्।
तस्मिंस्तीर्थं प्रतिष्ठाप्य त्रिः पिबेद् बिन्दुवर्जितम् ॥

और वस्त्र को दो गुणे (दोहरा) करके हाथ पर हाथ को रक्खे, उस हाथ में तीर्थ को रखकर बिन्दु से रहित तीन बार पिये।

अब भगवान् के प्रसाद का माहात्म्य लिखा जाता है—

महोपनिषत् में लिखा है—"विष्णुनाऽश्नातमश्नन्ति, विष्णुनाघ्रातं जिघ्रन्ति, विष्णुना पीतं पिबन्ति, विष्णुना रसितं रसयन्ति, तस्माद्विद्वांसो विष्णुपभुक्तं भक्षयेयुरिति।"

नारायण के दास लोग, विष्णु से खाये हुए को खाते हैं, विष्णु से सूँघे हुए को सूँघते हैं, विष्णु से पीये हुए को पीते है, विष्णु से रस लिये हुये को रस लेते हैं, तिस हेतु से ज्ञानी भक्त लोग, विष्णु के द्वारा भोग लगाये हूए को भक्षण करते हैं।

श्री पद्म पुराण में लिखा है—

विष्णोर्नैवेद्यकं शुद्धं मुनिभिर्मोक्षकांक्षिभिः ।
अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष के चाहने वाले मुनियों को विष्णु के पवित्र नैवेद्य (भोग लगाये हुए) को भोजन करना चाहिए; दूसरे देवता के प्रसाद को खाकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।

विष्णुदेहपरामृष्टं माल्यं पापहरं शुभम् ।
यो नरः शिरसा धत्ते स याति हरिमञ्जसा ।

जो मनुष्य, विष्णु के देह की शुद्ध मंगलरूप पाप-हरिणी माला को शिर से धारण करता है, वह शीघ्र नारायण को प्राप्त करता है ।

नैवेद्यमन्नं तुलसी विमिश्रं विशेषतः पादजलेन सिक्तम् ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नाति यज्ञायुतकोटिपुण्यम् ॥

जो प्रतिदिन मुर नामक दैत्य के शत्रु श्रीकृष्ण रूप नारायण के आगे तुलसी मिले हुये विशेष रूप से गंगा के जल से सींचे हुए निवेदन किये गये प्रसाद रूप अन्न को खाता है, वह दश हजार करोड़ यज्ञों के पुण्य को प्राप्त करता है ।

विष्णोर्निवेदितं चान्नं योऽश्नाति भुवि मानवः ।
स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥

जो मनुष्य, पृथ्वी पर विष्णु के निवेदन किये हुए अन्न को खाता है, वही फिर संसार में लौटने से रहित श्रेष्ठ स्थान त्रिपाद् विभूति महा वैकुण्ठ को प्राप्त करता है ।

पद्म पुराण में लिखा है—

भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेऽपि वा ।
आकण्ठमत्ति यत्तद्वै पुनाति सकलादघात् ॥

जो भक्ति से, लोभ से अथवा खेल से या भूख की शान्ति के निमित्त कण्ठ तक भगवत्प्रसाद को खाता है, वह निश्चय सकल पाप से छूटकर पवित्र हो जाता है ।

ममान्नं निक्षिपेद्यस्तु मम निन्दां करोति यः ।
मद्दर्शनेन यत्पुण्यं तत्सर्वं तस्य नश्यति ॥

जो मेरे प्रसाद रूप अन्न को अनादरपूर्वक फेंक देता है और जो मेरी निन्दा करता है, मेरे दर्शन से जो पुण्य होता है, वे सब उसके नाश हो जाते हैं ।

विष्णोर्निवेदितान्नं यो नाश्नाति स्पर्शशंकया ।
वायसो विड्वराहश्च विष्ठायां जायते कृमिः ॥

जो विष्णु के भोग लगाये हुए अन्न को छू जाने की शंका से नहीं खाता है, वह कौवा, बिलाड़, सूअर और विष्ठा में कीड़ा होकर जन्म लेता है ।

नारद पांचरात्र की परमेष्ठि संहिता में लिखा है—

विष्णोर्नैवेद्यं सन्त्यज्य यः कुर्यादन्नभक्षणम् ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

जो विष्णु के भोग लगे हुए प्रसाद को त्याग करके अन्न का भक्षण करे तो, वह, जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे, तब तक भयङ्कर नरक को प्राप्त करता है ।

स्कन्द पुराण में लिखा है—

तीर्थैः पवित्रितो वाऽपि तपस्वी वा जितेन्द्रियः ।
नारायणस्य नैवेद्यमभुक्त्वा पतितः क्षणात् ॥

तीर्थों से पवित्र हुआ भी, तपस्वी या इन्द्रियों को जीतने वाला होवे, नारायण के निवेदन किये हुए प्रसाद को न खाकर क्षणमात्र में पतित हो जाता है ।

नारदीय पुराण में भी लिखा है—

नारायणस्य नैवेद्यं विप्रहत्याविनाशनम् ।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ कणनिपातनात् ॥

नारायण का नैवेद्य (प्रसाद), ब्रह्म हत्या का विनाश करने वाला है । उसी को भूमि पर कणमात्र के गिरा देने से आठ गुणा पाप होता है ।

वाराह पुराण में लिखा है—

मदन्नत्याजिनं मूढं तथा मद्भक्तदूषकम् ।

मेरे भोग लगे हुए अन्न को त्यागने वाले अज्ञानी को तथा मेरे भक्तों के दूषण करने वाले को × × × × × × ।

दाल्भ्य स्मृति में लिखा है—

अन्नपानादिकं विष्णोः प्रसादं नित्यसेवनम् ।
सर्वाघनाशनं सर्वपुण्यदं मुक्तिदं श्रुतम् ॥

विष्णु के भोग लगे हुए अन्न-जल आदि तथा प्रसाद का नित्य सेवन करना, सब पापों का नाश करने वाला, सब पुण्यों का देने वाला तथा मुक्ति का देने वाला सुना गया है ।

विष्णोर्नैवेद्यमश्नीयाद्वैष्णवस्तु विशेषतः ।
शतजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।

वैष्णव, विशेष रूप से विष्णु के निवेदन किये हुए प्रसाद को भोजन करे तो, सौ जन्मों के किये हुए पाप उसी क्षण में नाश हो जाते हैं ।

विष्णोर्नैवेद्यं दुष्यन्ति ये नरा मूढचेतसः ।
शुनां योनिशतं प्राप्य पुनः सूकरतामियुः ।।

जो अज्ञान चित्त वाले मनुष्य लोग विष्णु के नैवेद्य (प्रसाद) की निन्दा करते हैं, वे कुत्तों के सौ जन्मों को पाकर फिर सूअर जन्म को प्राप्त करते हैं ।

पांचरात्र में लिखा है—

यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम् ।
तेनैव पिण्डांश्च तिलैर्विमिश्रांस्तरकोटिकल्पं पितरस्सुतृप्ताः ।।

जो श्राद्ध काल में नारायण के भोग लगे हुए प्रसाद को प्रेम से पितृ-देवताओं को देता है और उसी प्रसाद से तिलों से मिले हुए पिण्डों को देता है, तो उसके पितर लोग करोड़ों कल्प (ब्रह्मा के दिनों) तक अच्छी तरह तृप्त (सन्तुष्ट) रहा करते हैं ।

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् ।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ।।

विष्णु के निवेदन किये हुए अर्थात् भोग लगाये हुए अन्न (प्रसाद) से देवतान्तरों अर्थात् अन्य देवों की पूजा करनी चाहिए और पितृ लोगों को भी वही देना चाहिए । वह मोक्ष के साधन होता है ।

श्राद्धे होमे तथा भक्ते उपहारे तथैव च ।
न दूष्यं वैष्णवान्नं च पचेद्भक्त्या यथाविधि ।।

श्राद्ध में, हवन में तथा भोजन में और उसी प्रकार भेंट देने में विष्णु के अन्न (प्रसाद) की नहीं निन्दा करनी चाहिए और जैसी पाक शास्त्र की विधि होवे, प्रेम से पाक करना चाहिए ।

भारद्वाज संहिता में लिखा है—

यो न दद्याद्धरेर्भुक्तं पितॄणां श्राद्धकर्मणि ।
अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं तु सह द्विजैः ।।

जो पितृ लोगों के श्राद्ध कर्म में नारायण के भोग लगाये हुए प्रसाद को नहीं देता है तो, उसके पितर लोग, श्राद्ध कराने वाले ब्राह्मणों के साथ मल-मूत्र खाते हैं।

विष्णोर्निवेदितं नित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धविः।
पितृभ्यश्च विशेषेण सर्वमानन्त्यमश्नुते॥

विष्णु के निवेदित (भोग लगाये हुए) को नित्य देवों के लिये और विशेष-रूप से पितृ लोगों के लिये घृत आदि हवन करने के द्रव्य को हवन करता है तो नारायण की प्राप्ति रूप सम्पूर्ण मोक्ष को पाता है।

विष्णवे कल्पितं चान्नं दद्याद् भक्तेभ्य एव च।
वैश्वदेवं ततः कुर्याच्छ्राद्धकर्मादिकं तथा॥

विष्णु के निमित्त बनाये हुए अन्न (भोजन) को उनके भक्तों को ही दे देवे, तदनन्तर बलि वैश्व देव कर्म [भोजन के पूर्व थोड़ी सब सामग्रियों को मिलाकर कौवे आदि पक्षियों को देना] को तथा श्राद्ध कर्म आदि को करें।

हरिभुक्तिशेषं तद्दद्यात् पितृणां च दिवौकसाम्।
तदेव जुहुयादग्नौ भुञ्जीयाच्च स्वयं नरः॥

मनुष्य पितरों के लिये और देवताओं के लिये उन नारायण के भोग लगे हुए शेष प्रसाद को देवे और उसी को अग्नि में हवन करे तब आप भोजन करे।

यदा लभेत् स्वसिद्धान्नं भुञ्जीत प्रोद्यमेव तत्।
विष्णुभुक्तमिति ध्यात्वा सात्विकस्तु विशेषतः॥

सात्विक पुरुष तो विशेष रूप से "विष्णु का भोग लगा-हुआ है"—ऐसा ध्यान करके जब प्राप्त करे, तब अपने सिद्ध अन्न को भोजन कर, प्रोक्षण (कुल्ला आचमन आदि) करना चाहिए।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

स्वयंव्यक्तादिस्थानानि श्रीरङ्गव्यङ्कटादयः।
मद्भुक्तशेषमानीय गृहबिम्बे निवेदयेत्॥

स्वयं व्यक्त (अपने आप प्रकट), आदि (दिव्य ब्रह्मा प्रभृति देवों से प्रतिष्ठित) स्थान श्रीरंग-वेङ्कटेश आदि [मुक्ति नारायण, नैमिषारण्य, तोताद्रि-पुष्करराज-नर नारायण (बदरिकाश्रम)-श्रीमुष्णम्] हैं, वहाँ से मेरे भोग लगाये हुए शेष (प्रसाद) को लाकर घर की मूर्ति के विषय में निवेदन करे।

उशना (शुक्राचार्य) जी की स्मृति में लिखा है—

ग्रामप्रतिष्ठाशेषं तु गृहार्चायां निवेदयेत् ।
ततोऽन्तर्यामिणे दद्यात् स्वयं भुञ्जीत वैष्णवः ।।

ग्राम में प्रतिष्ठा की हुई भगवान की मूर्ति के शेष (प्रसाद) को तो घर की पूजित भगवन्मूर्ति के विषय में निवेदन करे। तत्पश्चात् अन्तर्यामी को देवे। फिर वैष्णव आप भोजन करे।

प्राणेभ्यो जुहुयादन्नं मन्निवेदितमुत्तमम् ।
ममापि हृदयस्थस्य पितृभ्यश्च विशेषतः ।।

उत्तम मुझ परमात्मा को निवेदन किये हुए अन्न को "ॐ प्राणाय स्वाहा" कहकर पाँच प्राणों के लिये हवन करे अर्थात् खावे। तदनन्तर हृदय में रहने वाले मुझ हृदय के अन्तर्यामी के लिये भी हवन करे। और विशेष रूप से पितरों के लिये हवन करे।

स्रक्चन्दनादि ताम्बूलं यो भुंक्तेऽनर्पितं हरेः ।
कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभुग्भवेत् ।।

जो नारायण के नहीं अर्पण किये हुए माला-चन्दन आदि पान का भोग करता है, वह हजारों करोड़ कल्प (ब्रह्मा के दिनों) तक वीर्य-विष्ठा-मूत्र का खाने वाला होगा।

अनिवेदितमन्नाद्यं यो भुंक्ते मूढचेतसा ।
श्वानविष्ठासमं चान्नं पानं तत्सुरया समम् ।।

जो अज्ञान चित्त वाला, बिना नारायण के समर्पण किये हुए अन्न आदिकों को खाता है, अतः कुत्ते के मैले के समान अन्न और वह जल मदिरा के समान हो जाता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम् ।
नार्पयन्ति च ये विष्णोस्तुल्यं गोमांसभक्षणम् ।।

जो लोग, विष्णु को तुलसी-पत्र फूल, फल, जल, अन्न, रस और ओषधि आदि को नहीं अर्पण करते हैं, उनका गो-मांस खाने के समान है।

हारीत स्मृति में लिखा है—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
पावनं भगवद्भुक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनम् ।।

ब्रह्मचारी और गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी, पवित्र और अग्र भोजन भगवान् के भोग लगाये हुए को भोजन करते हैं।

भृगु संहिता में लिखा है—

उपवासव्रतानां च भक्तानां ब्रह्मचारिणाम्।
विष्णुतीर्थं प्रसादं च स्वीकुर्याद् भक्तियोगतः॥

उपवास व्रत वालों को, भक्तों को और ब्रह्मचारियों को भक्ति योग-से विष्णु के तीर्थ और प्रसाद को स्वीकार करना चाहिए।

रसगन्धादिलाभेन स्वीकुर्याद् भक्तिकण्टकम्॥

भक्ति के कण्टक (काँटे) को रस-गन्ध आदिकों के लोभ से स्वीकार करे।

विष्णु रहस्य नामक ग्रन्थ में लिखा है—

मन्त्रपूतं हि नैवेद्यं निषिद्धाय ददाति यः।
सिद्धोऽपि पातकी नित्यमारुरुक्षुस्तु किं पुनः॥

जो नीच (भगवद्विमुख) मनुष्य के लिये मन्त्र से पवित्र ही नैवेद्य (प्रसाद) को देता है, वह सिद्ध होता हुआ भी पातकी है तो फिर ऊपर चढ़ने की इच्छा वाला क्यों करेगा ?

महाभारत में लिखा है—

अन्त्यजाय च यो दद्याद्विष्णुशेषं हविः शुभम्।
निरयं स महाघोरं रौरवं प्राप्नुयान्नरः॥

और जो भगवद्विमुख चाण्डाल को विष्णु के शेष (प्रसाद) स्वरूप सुन्दर हविष् (तस्मै) को देगा तो वह मनुष्य बड़े भयङ्कर रौरव नरक को प्राप्त करेगा।

भगवद्भक्तिहीनस्य नैवेद्यं विषमुच्यते।
भगवद्भक्तियुक्तस्य तदेव ह्यमृतं भवेत्॥

भगवान की भक्ति से रहित के लिये नैवेद्य (भगवान का प्रसाद) विष कहा गया है और भगवान की भक्ति युक्त के लिये वही अमृत हो जाता है।

वाराह पुराण में लिखा है—

विष्णोरुच्छिष्टं दातव्यं नाभक्ताय कदाचन।
दाता प्रतिग्रहीता च उभौ नरकभागिनौ॥

विष्णु का भोग लगा हुआ प्रसाद, अभक्त को कभी नहीं देना-चाहिए, क्योंकि देने वाला और विरुद्ध रूप से लेने वाला दोनों नरक के भागी होते हैं।

श्रीमद्भागवत में उद्धव का वचन है—

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

हे श्री कृष्ण ! तुमसे भोग लगाये हुए माला-मलयागिरि चन्दन-वस्त्र रूप अलङ्कारों से सजे हुए जूठे प्रसाद के भोजन करने वाले हम दास लोग तुम्हारी माया को जीतते हैं।

नारद पाञ्चरात्र में लिखा है—

अवैष्णवानां पक्वान्नं पतितान्नं तथैव च।
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् ॥

अवेष्णवों का पकाया हुआ अन्न और वैसा ही पापियों का अन्न तथा विष्णु का नहीं अर्पण किया हुआ कुत्ते के मांस के समान अपवित्र होता है।

दत्तात्रेय स्मृति में लिखा है—

निर्माल्यं भक्षयित्वैवं मच्छिष्टमगुरोरपि।
मासं पयोव्रती भूत्वा जपन्नष्टाक्षरं सदा ॥
ब्रह्मकूर्चं ततः पीत्वा पूतो भवति मानवः।

गुरु से भिन्न दूसरे के भी जूठे प्रसाद को इस प्रकार खाकर एक-महीने तक केवल जल मात्र पीकर व्रत करने वाला होकर सदा नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र को जपता हुआ तदनन्तर ब्रह्म कूर्च [१०८ कुशाग्रों को एक साथ मुट्ठी बाँधकर उसे जल में डुबा करके उसके पानी को] पीकर मनुष्य पवित्र होता है।

प्रसादं षड्विधं प्रोक्तमनुज्ञातं कटाक्षितम्।
हस्तदत्तं मुखाघ्रातं भाण्डोच्छिष्टं तथैव च ॥
उत्तरापोशनात्पूर्वं दत्तोच्छिष्टं तु पावनम्।

प्रसाद छः प्रकार के कहे गये हैं—आज्ञापित, कटाक्षित (आँखों से इशारा किया हुआ), हाथ से दिया हुआ, मुख से सूँघा हुआ और वैसा ही वर्त्तन का जूठा किया हुआ एवं उत्तर के आपोशन से पहले दिया हुआ जूठा प्रसाद तो पवित्र है।

उसी स्मृति में कहा है—

निर्माल्यं नैव संभक्षेत् कूपे सर्वं च निक्षिपेत्।
स्वीकुर्याद्यदि संमोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

महादेव के प्रसाद को नहीं खावे; कुएँ में सबको ही डाल देवे। अज्ञान से यदि स्वीकार करेगा तो, रौरव नरक को जायगा।

मक्षिकापादमात्रं तु निर्माल्यं न स्पृशेत्क्वचित् ।
यदि स्पृशेत् स माहाद्वै नरकेषु निमज्जति ॥

मक्खी के पाँवमात्र भी महादेव के प्रसाद को कहीं नहीं स्पर्श करे। यदि वह अज्ञान से भी स्पर्श करेगा तो, नरकों में डूबेगा।

शिव पुराण में रुद्र का वाक्य है—

पूजां कुर्यात् त्रिसन्ध्यं तु तथा भक्तिमचञ्चलाम् ।
मम तीर्थं प्रसादं च नैवेद्यं परिवर्जयेत् ॥

प्रातः-मध्याह्न-सायं—तीनों कालों में सन्ध्यावन्दनपूर्वक पूजा तथा दृढ़ भक्ति को करे, परन्तु मेरे तीर्थ-प्रसाद और नैवेद्य को त्याग करे।

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
निवेद्य भक्त्या भक्ष्यं तत्सर्वं कूपे विनिक्षिपेत् ॥

बिल्व-आक का पत्र, अकवन-धतर का फूल, और जल तथा मेरा नैवेद्य (प्रसाद) अयोग्य है। भक्ति से उन सब भक्ष्य पदार्थों को निवेदन करके कूएँ में डाल देवे।

धर्म शास्त्र में भी कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं चान्यं महादेवसमर्पितम् ।
नाश्नीयात्परिगृह्यैतन्निखनेद्वा जले क्षिपेत् ॥

महादेव के समर्पण किये हुए पत्र, फूल, फल और दूसरी वस्तु को नहीं खावे। इनको लेकर गढ़े में या पानी में फेंक देवे।

वायु पुराण में लिखा है—

जिह्वाचापल्यसंयुक्तो द्विजः संस्कारवर्जितः ।
शिवनिर्माल्यभोजी च रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

ब्राह्मण, संस्कार से रहित, जीभ की चपलता से युक्त रहा हुआ और शिव के प्रसाद का खाने वाला रौरव नरक को जायगा।

अनर्चकद्विजातीनां तीर्थपानं सुरासमम् ।
प्रसादं मांसतुल्यं स्याच्चन्दनं रुधिरं स्मृतम् ॥

नहीं पूजा करने वाले ब्राह्मणों के हाथों का तीर्थ पीना मदिरा के समान है और प्रसाद, मांस के तुल्य होगा एवं चन्दन को रुधिर कहा गया है।

अवैष्णवं घृतं तक्रं प्रपन्नो मद्यवत्त्यजेत् ।
अवैष्णवान्नं तच्छेषं वैष्णवो मांसवत्त्यजेत् ॥

भगवान् का शरणागत चेतन, अवैष्णव के घी और छाँछ (मट्ठा) को मदिरा के समान त्याग देवे। उस अवैष्णव के अन्न खाये हुए को वैष्णव मांस की भाँति त्याग करे।

विष्ण्वर्चारहिते ग्रामे विष्ण्वर्चारहिते गृहे।
न कुर्यादन्नपानादि न तत्र दिवसं वसेत्॥

विष्णु की पूजा से रहित ग्राम में और विष्णु की पूजा से रहित घर में खाना-पीना आदि न करे तथा वहाँ एक दिन भी नहीं वास करे।

वर्जयेदन्यदेवानां मालाद्यायुधमर्पणम्।
तथा गोपुरहर्म्याणामस्त्रादेश्चावलोकनम्॥

नारायण से अतिरिक्त दूसरे देवों की माला आदि और आयुध के अर्पण को तथा द्वार-प्रासादों के एवं अस्त्र आदि के देखने को त्याग करे।

गीतवादित्रपटहशब्दानां श्रवणं तथा।
कर्माणि च समस्तानि वाद्यानि चेतराणि च॥

तथा दूसरे देवों के गीत, बाजे-ढोल के शब्दों का सुनना वर्जित करे और उनके समस्त कर्मों को एवं दूसरे बाजों को भी त्याग देवे।

हारीत स्मृति में लिखा है—

दैवतान्तरचिह्नैरङ्कितं वस्त्रादिकमपि न ग्राह्यं वैष्णवैः। एतत्प्रयत्नेन वर्जयेत्॥

दूसरे देवों के चिह्नों से अंकित वस्त्र आदिक भी वैष्णवों को नहीं ग्रहण करना चाहिये। इनको प्रयत्न से वर्जित करे।

अन्यचिह्नाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम्।
वृक्षान्पशून्कूपगृहं सर्वं च परिवर्जयेत्॥

प्रपन्न श्रीवैष्णव, दूसरे देवों के चिह्नों से अंकित वस्त्र-भूषण आसन-पात्र (बर्तन)-वृक्षों-पशुओं-कूएँ-घर सबको ही परिवर्जित करे।

अवैष्णवस्य हस्तान्नं दिव्यदेशादुपागतम्।
हरेः प्रसादं तीर्थं च प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥

अवैष्णव के हाथ से अन्न को और दिव्य देशों से लाये हुए भगवान् के प्रसाद तथा तीर्थ को प्रयत्नपूर्वक वर्जित करे।

वैष्णवानां सदाऽश्नीयाद्विष्णुसायुज्यहेतवे।
वैष्णवान्नं त्यजेद्यो वै स याति नरकं ध्रुवम्॥

नारायण की सायुज्य मुक्ति के हेतु से वैष्णवों के दिये हुए भगवत्-प्रसाद को सदा भोजन करे। जो निश्चय विष्णु के प्रसाद रूप अन्न को त्याग देवे तो, वह निश्चय नरक को जायगा।

सदा च विष्णुशुश्रूषां गुरुसेवां तथैव च।
सदा वैष्णवसेवां च कुर्यान्मोक्षार्थचिन्तकः ॥

मोक्ष रूप अर्थ का चिन्तन करने वाला, निरन्तर ही विष्णु की सेवा और वैसी ही गुरु की सेवा तथा सदा वैष्णव-सेवा को करे।

अनन्तर भगवान् के आराधन में असत्पदार्थ के स्पर्श का निषेध लिखा जाता है—

वह १६ के मत में कहा गया है—

दीपं सूर्पं तथा शय्यां पादत्राणं च मार्जनीम्।
स्नानान्ते यः स्पृशेद्विप्रः पुनः स्नानेन शुद्ध्यति ॥

जो ब्राह्मण, स्नान के बाद दीप, सूप तथा पलँग, जूते और झाड़ू को छू देवे तो, फिर स्नान से शुद्ध होता है।

काक श्व खर विट् क्रोड ताम्र चूड रजस्वलाः।
व्रात्यान्त्यपतितान्पश्यंस्ततो नोपस्पृशेद्बुधः ॥

ज्ञानी पुरुष कौवे, कुत्ते, गधे, बिलाड़, सूकर, मुर्गे, रजस्वला, संस्कार से भ्रष्ट, चाण्डाल और पतितों को देखता हुआ तदनन्तर नहीं स्पर्श करे।

दीपाग्नि दीपतैलं च भस्म चास्थि रजस्वलाम्।
एतानि ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशत् ॥

ब्राह्मण, दीप की अग्नि को और दीप के तैल को, भस्म, हड्डी और रजस्वला को—इन सबों को छू करके वस्त्र सहित जल में प्रवेश करे।

देवाजीविभिषक्शूद्रांश्चाण्डालानुरुपातकान्।
पश्यन्नोपस्पृशेद्धीमानन्यान्संकरजानपि ॥

बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष, देवता के नाम से आजीविका करने वाले को, वैद्य को, शूद्रों को, चाण्डालों को, बढ़े हुए पातक वालों को और दूसरे वर्ण-संकर से उत्पन्न वालों को भी देखता हुआ नहीं स्पर्श करे।

यो लुब्धो नास्तिकः क्रूरः पिशुनो विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः प्रायो मलिन एव सः ॥

जो, लोभी, नास्तिक (ईश्वर-वेद के निन्दक), क्रूर (घातक, कठोर, कर्कश, कठिन, निष्ठुर, दयाहीन), चुगलखोर और विषयी है, सब तीर्थों में स्नान किया हुआ भी वह प्रायः (विशेष) मलिन ही है।

मनु स्मृति में लिखा है—

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ।
शवं तत्स्पर्शिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ।।

नाई (नापित) को और रजस्वला को, पतित को तथा प्रसूती को, मुर्दे को और उस मुर्दे स्पर्श करने वाले को छूकर स्नान से शुद्ध होता है।

गौतम स्मृति में लिखा है—

चाण्डालसूतिकोदक्याः पतिताः शव एव च ।
एतेषां स्पर्शनादेव सचैलं स्नानमाचरेत् ।।

चाण्डाल, प्रसूती स्त्री, रजस्वला, पतित और निश्चय मुर्दा—इनके छूने से ही वस्त्र सहित स्नान करे।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

रजस्वलां सूतिकां च श्वानं काकं च गर्दभम् ।
कुक्कुटं विड्वराहं च पूयंपाखण्डिनस्तथा ।।
बहिर्देवालकान्स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।।

रजस्वला को और प्रसूति को, कुत्ते को, कौवे को और गधे को, मुर्गे को, बिलाड़ को तथा सूअर को, कुष्ट मनुष्य को और पाखण्डियों को, बाहर देवालकों [गणेश-भैरव-दुर्गा-रुद्र आदि उग्र अर्थात् भयङ्कर देवताओं की भक्ति से पूजा करने वाले ब्राह्मणों] को छूकर वस्त्र सहित जल में प्रवेश करे।

देवालक का लक्षण लिखा जाता है—

गणेशं भैरवं दुर्गां रुद्रादीनुग्रदेवताम् ।
योऽर्चयेद्भक्तिमान्विप्रः स वै देवालकः स्मृतः ।।

जो भक्ति से युक्त ब्राह्मण, गणेश-भैरव-दुर्गा-रुद्र आदि उग्र देवताओं की पूजा करता है, वही देवालक कहा गया है।

वेदवेद्यं ब्राह्मणेशं भुवि कर्मप्रियं हरिम् ।
योऽर्चको ब्राह्मणः श्रेष्ठो न स देवालनामकः ।।

वेदों से जानने के योग्य, ब्राह्मणों के स्वामी, पृथ्वी पर कर्म-प्रिय नारायण का जो श्रेष्ठ ब्राह्मण, पूजन करने वाला है, वह देवालक नाम वाला नहीं है।

अनन्तर आतुर (रोगी) के विषय की बात है—

आतुरे स्नानसंप्राप्ते दशकृत्वो ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत्स आतुरः ।।

रोगी के विषय में स्नान की प्राप्ति होने पर अपूर्व विचार करके रोगी नहीं स्नान करके स्वस्थ मनुष्य दस बार स्नान कर-कर के इस रोगी को स्पर्श करे, उससे वह रोगी शुद्ध हो जायगा ।

'अखण्डादर्श' में लिखा है—

असामर्थ्याच्छरीरस्य वैषम्याद्देशकालयोः ।
स्नानान्यन्यानि तुल्यानि मानसं श्रेष्ठमुच्यते ।।

देश-काल की विषमता से शरीर के नहीं सामर्थ्य होने से दूसरों के समान स्नान, मानस स्नान (भगवान् का नाम-स्मरण) श्रेष्ठ कहा गया है ।

आपः स्वभावतो मेध्याः किं पुनर्वह्नितापिताः ।
तेन सन्तः प्रशंसन्ति स्नानमुष्णेन वारिणा ।।

जल, स्वभाव से पवित्र है; फिर आग से तपाये हुए जल का क्या कहना है ? उससे सन्त जन, गर्म जल से स्नान की प्रशंसा करते हैं ।

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च आचम्य च ततः परम् ।
अन्ते च वाससस्त्यागस्ततः शुद्धयेत् स आतुरः ।।

दोनों हाथों को और दोनों पावों को धोकर एवं तत्पश्चात् आचमन करके अन्त में फिर वस्त्र का त्याग अर्थात् दूसरा वस्त्र पहिरे; उससे वह रोगी शुद्ध हो जायगा ।

श्री विष्णु भगवान् के उत्सव में स्पर्श-दोष नहीं माना जाता है ।

हारीत स्मृति में कहा है—

उत्सवे वासुदेवस्य यः स्नाति स्पर्शशंकया ।
पतितः स नरश्चैव रौरवं नरकं व्रजेत् ।।

जो वासुदेव के उत्सव काल में छू जाने की शंका से स्नान करता है, वह मनुष्य निश्चय पतित होकर रौरव नरक को जायगा ।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

उत्सवे वासुदेवस्य वीथ्या संमार्जने कृते ।
उच्छिष्टभस्मकेशास्थि स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत् ।।

वासुदेव के उत्सव काल में गली को झाड़ू से साफ करने पर झूठा-राख-केश-हड्डी को छूकर स्नान नहीं करे।

वाराह पुराण में लिखा है—

सन्ध्योपास्तिं करिष्यन्ति द्विजा विष्णुपराङ्मुखाः।
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं यनिमाप्नुयुः॥

विष्णु से विमुख रहने वाले ब्राह्मण सन्ध्या-उपासन करेंगे वे, रौरव नरक को प्राप्त करके चाण्डाल के जन्म को प्राप्त करेंगे।

नानुव्रजति यो मोहादुर्मतिर्हरिमुत्सवे।
ज्ञानाग्निदग्धक्लेशोऽपिवसते नरकेऽशुचौ॥

जो दुष्ट बुद्धि वाला, अज्ञान से उत्सव में नारायण के विमान के पीछे नहीं चलता है, वह ज्ञान रूप अग्नि से दग्ध क्लेश होता हुआ भी अपवित्र नरक में वास करता है।

स्कान्द पुराण में लिखा है —

ये अर्चयन्ति देवेशं सुपर्णोपरि संस्थितम्।
किं करिष्यन्ति ते तीर्थैर्देवतानां च दर्शनैः॥

जो लोग, गरुड़ के ऊपर बैठे हुए देवों के स्वामी नारायण की पूजा करते हैं, वे तीर्थों से और देवताओं के दर्शनों से क्या करेंगे?

किं यज्ञैः किं व्रतैर्वापि किं दानैः किमुपोषणैः।
मूर्तिं नारायणीं यत्र पश्यन्ति गरुडोपरि॥

जहाँ पर गरुड़ के ऊपर नारायण की मूर्ति को देखते हैं, वहाँ यज्ञों से क्या प्रयोजन है? व्रतों से क्या प्रयोजन है? दानों से क्या प्रयोजन है? अथवा उपवासों से क्या प्रयोजन है?

वहाँ ही भगवान् का वचन है—

मन्निमित्तं कृतं कर्म कर्मलोपो भवेद्यदि।
तत्कर्म कुरुते नित्यं तिस्रः कोट्यो महर्षयः॥

मेरे निमित्त किया हुआ कर्म, यदि कर्म का लोप हो जावे, तो, तीन कोटि महर्षिगण, उस कर्म को नित्य किया करते हैं।

मन्निमित्तं कृतं पापं मद्धर्माय च कल्पते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान्मत्प्रभावतः॥

मेरे निमित्त किया हुआ पाप, मेरे विषय में धर्म के लिये ही विचार करता है। मुझ ईश्वर को निरादर करके धर्म भी मेरे प्रभाव से पाप हो जायगा।

पद्म पुराण में भृगु का वचन है—

स कर्ता सर्वधर्माणां भक्तो यस्तव केशव।
स कर्ता सर्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत॥

हे केशव! तुम्हारा जो भक्त है, वह सब धर्मों का करने वाला है और हे अच्युत! जो तुम्हारा भक्त नहीं है, वह सब पापों का करने वाला है।

'वैश्वानर क्रियाधिकार' में लिखा है—

उत्सवे वासुदेवस्य यः स्नाति स्पर्शशंकया।
स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य पतन्ति नरके क्षणात्॥

जो वासुदेव के उत्सव में छू जाने की शङ्का से स्नान करता है, उसके स्वर्ग में रहने वाले पितर लोग, क्षणमात्र में नरक में गिर जाते हैं।

विष्ण्वालय समीपस्थान्विष्णुसेवार्थमागतान्।
चाण्डालान्पतितान्व्रात्यान्स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्॥

विष्णु के मन्दिर के निकट में रहे हुये विष्णु की सेवा के लिए आये हुए चाण्डाल-पतित-संस्कार से गिरे हुओं को स्पर्श करके स्नान नहीं करे।

'विष्णु धर्मोत्तर' पुराण में लिखा है—

विष्णुरथ्यासु चायान्ति मन्दिरे चोत्सवे गते।
दर्शनाकांक्षिणः सर्वे अस्पृश्याश्चापि मानवाः॥
सर्वे देवसमाना वै कथिता मुनिसत्तमाः।
तान्संस्पृश्य तु यः स्नानं कुर्वन् स नरकं व्रजेत्॥

हे मुनियों में श्रेष्ठ महात्माओ! भगवान् के मन्दिर में ही उत्सव प्राप्त होने पर नारायण की गलियों में ही दर्शन चाहने वाले सब अस्पृश्य (नहीं छूने के योग्य) मनुष्य लोग भी आते हैं; वे सभी देवताओं के समान ही कहे गये हैं, उन लोगों को अच्छी तरह स्पर्श करके जो स्नान करने वाला है, वह नरक को जायगा।

उसी प्रकार छत्तीस के सिद्धान्त में कहा गया है—

देवयात्राविवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥

देवताओं की यात्रा में, विवाहों में और आरम्भ किये गये यज्ञों में तथा सब उत्सवों में छुआ-छूत नहीं होता है।

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ।
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ।।

तीर्थ में, विवाह में, यात्रा में, संग्राम में, देश के विप्लव में और नगर-ग्राम में आग लग जाने पर छुआ-छूत नहीं रहता है ।

अब भगवान् के आराधन में युगल माला का धारण आवश्यक लिखा जाता है—

नारद पाञ्चरात्र की भारद्वाज संहिता में लिखा है—

पूजाकाले हरिध्याने सन्ध्यादिवन्दने तथा ।
तुलसी धार्यते कण्ठे ते भक्ता हरिवल्लभाः ।।

जो पूजा काल में, नारायण के ध्यान में तथा सन्ध्यादि वन्दन में तुलसी को कण्ठ में धारण करते हैं, वे भक्त लोग नारायण के प्यारे हैं ।

श्रवणे कीर्तने चैव मन्त्रजाप्ये च वैष्णवैः ।
धार्यते तुलसी कण्ठे महाभागवतोत्तमैः ।।

उत्तम महा भागवत वैष्णव लोग, भगवान् की कथा-श्रवण-काल में और कीर्तन में तथा मन्त्र-जप काल में कण्ठ में तुलसी को धारण करते हैं ।

सदा संधारयेद्यस्तु तुलसीमणिमालिकाम् ।
भूतप्रेतपिशाचास्तु वर्तन्ते न समीपतः ।।

परन्तु जो सदा पवित्र अवस्था में तुलसी की मणियों की माला को धारण करता है, फिर भूत-प्रेत-पिशाच निकट में नहीं रहते हैं ।

न धारयन्ति ये मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।
विष्णुकोपाग्निना दग्धास्ते यान्ति यममन्दिरम् ।।

जो लोग तुलसी के काठ की बनी हुई माला को नहीं धारण करते हैं, वे विष्णु के कोप रूप अग्नि से जले हुए यम के घर को जाते हैं ।

मार्कण्डेय पुराण में कहा है—

अष्टोत्तरशतेनैव तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।
कण्ठादिनाभिपर्यन्तं धारयेद्वैष्णवोत्तमः ।।

उत्तम श्रीवैष्णव, तुलसी के काठ की बनी हुई एक सौ आठ दाने (मणियों) के द्वारा ही कण्ठ से लेकर नाभी तक लम्बी माला को धारण करे ।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

पद्माक्षमाला विप्राणां धारणीया प्रयत्नतः ।
जपहोमार्चनाद्येषु विशेषेण च धारयेत् ॥

ब्राह्मणों को विशेष रूप से ही जप-होम-पूजन आदि कर्मों में प्रयत्नपूर्वक कमल की माला धारण करनी चाहिए ।

वामन पुराण में लिखा है—

पद्माक्षं धारयेद्यस्तु जपहोमव्रतादिषु ।
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥

और जो जप-होम-व्रत आदि कर्मों में कमल की माला को धारण करे तो, वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करके विष्णु लोक (वैकुण्ठ) में पूजित होता है ।

पद्माक्षमालिका नित्यं धारणीया प्रयत्नतः ।
धारयेच्च विशेषेण जपहोमार्चनादिषु ॥

कमलाक्ष की माला नित्य प्रयत्न से धारण करनी चाहिए । और विशेष रूप से जप-होम-पूजन आदि कर्मों में धारण करनी चाहिए ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तुलस्याः पूजनं कुरु ।
एकाग्रमनसा राजस्तुलसी हरिवल्लभा ॥

हे राजन् ! तिस हेतु से सब उपायों से एकाग्र मन से तुलसी का पूजन करो; तुलसी नारायण की प्यारी है ।

तुलसी देवपूजायां जाप्यकाले तथैव च ।
पूजने स्मरणे चैव अन्यकाले न धारयेत् ॥

नारायण देव की पूजा में और वैसे ही मन्त्र जप के समय, पूजन और स्मरण में ही तुलसी-माला को धारण करे; दूसरे समय नहीं धारण करे ।

भोजने शयने स्नाने मलमूत्रविसर्जने ।
तुलसीकाष्ठमालाया धारणात्पतितो भवेत् ॥

भोजन काल में, शयन काल में, स्नान काल में, मल-मूत्र-त्याग के समय तुलसी के काठ की माला के धारण करने से पतित हो जायगा ।

अरण्ये लघुबाधायां मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तुलसीकर्णकण्ठस्य ब्रह्महत्या पदे पदे ॥

शौच जाने के समय, लघु शङ्का के समय, स्त्री प्रसंग काल में और क्षौर कर्म में तुलसी को कान और कण्ठ में धारण करने वाले के लिये ब्रह्म-हत्या पग-पग पर होती है अर्थात् पग-पग पर ब्रह्म-हत्या के समान पाप लगता है।

तुलसी धार्यते कण्ठे मलमूत्रविसर्जने।
नरके पच्यते मूढो यमदण्डेन पीडितः॥

मल-मूत्र के त्याग काल में कण्ठ में तुलसी को धारण करता है तो, यम के दण्ड से पीड़ित मूढ़ (अज्ञानी), नरक में पकाया जाता है।

शाण्डिल्य स्मृति में लिखा है—

तुलसी च यथा लक्ष्मीर्लक्ष्मीश्च तुलसी तथा।
न भेदस्त्वेतयोः राजंस्तुलसी हरिवल्लभा॥

हे राजन्! जैसी लक्ष्मी नारायण की प्यारी है, वैसी प्यारी नारायण की तुलसी भी है और जैसी लक्ष्मी नारायण की पटरानी है, वैसी नारायण की तुलसी पटरानी है। इन दोनों में भेद नहीं है; क्योंकि, तुलसी नारायण की अत्यन्त प्यारी है।

शालग्रामशिलातुल्या तुलसीकाष्ठमालिका।
न भेदोऽस्ति तयोः किञ्चित्तस्मात्स्नात्वा तु धारयेत्॥

तुलसी के काठ की माला शालग्राम शिला के समान है; उन दोनों में कुछ भेद नहीं है, तिस हेतु से स्नान करके ही धारण करे।

स्नानकाले यदा कण्ठे तुलसीदामभूषिता।
तद्वारि पतितं पादौ स पापिष्ठो नराधमः॥

स्नान के समय जब कण्ठ में तुलसी सूते से अलंकृत है; उसका जल दोनों पाँवों पर गिरा, अतः वह मनुष्यों में नीच पापी है।

तुलसीकाष्ठमालां यो ह्यशौचे वहते तु वै।
अवैष्णवः स विज्ञेयो महापातकवान्भवेत्॥

क्योंकि जो अपवित्र काल में तुलसी के काठ की माला को निश्चय धारण करता है, वह अवैष्णव जानने के योग्य है; इसलिए महा पातकी होगा।

यज्ञोपवीतवद्धार्या इति स्मृत्वा स उच्यते।
यज्ञसूत्राधिका ज्ञेया तुलसी हरिवल्लभा॥

यज्ञोपवीत के सदृश [अर्थात् यज्ञोपवीत को मल-मूत्र करने के समय पवित्र स्थान कान या मस्तक पर चढ़ा ली जाती है, तद्वत् तुलसी की माला को मल-मूत्र

आदिकों के समय कहीं पवित्र स्थान में रखकर स्नान आदि करके पवित्रतापूर्वक] तुलसी की माला को धारण करना चाहिए—ऐसा स्मरण करके वह कहा गया है। यज्ञ सूत्र से अधिक तुलसी जानने के योग्य है; क्योंकि तुलसी नारायण की प्रियतमा है।

पुलस्त्य संहिता में लिखा है—

यज्ञसूत्रं त्रिवर्णानां वैदिकं कर्मसिद्धये।
तुलसी सर्ववर्णानां स्त्रीणां मोक्षप्रदायिनी॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य रूप तीनों वर्णों का यज्ञ सूत्र (जनेऊ) वेद-प्रतिपादित कर्म है; सब वर्णों के और स्त्रियों के ईश्वर-प्राप्ति रूप मोक्ष की सिद्धि के लिए भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष को देने वाली तुलसी है।

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम्।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम्॥

जो मनुष्य, तुलसी के काठ की बनी हुई माला को केशव के विषय में भक्ति से निवेदन करके अर्थात् समर्पण करके धारण करता है, उसका निश्चय पातक नहीं रहता है।

और भी महोपनिषद् में लिखा है—

शंख-चक्र धरो विद्वान् मालां तुलसिजां दधत्। स जीवन्मुक्त इति।

शंख-चक्र का धारण करने वाला ज्ञानी पुरुष, तुलसी की बनी हुई माला को धारण करता है, वह जीवन्मुक्त है।

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति न पापं तस्य विग्रहे।
तुलसी काष्ठसंभूतां मालां यो वहते नरः॥

जो मनुष्य, तुलसी के काठ की बनी हुई माला को धारण करता है, उसका प्रायश्चित्त नहीं है और न उसके शरीर में पाप रहता है।

श्री पद्म पुराण में लिखा है—

कृष्णायुधाङ्कितं विप्रं तुलसीकाष्ठभूषितम्।
दृष्ट्वा निन्दापरो यस्तु स वै नरकभाग्भवेत॥

श्रीकृष्ण के शङ्ख-चक्र आयुध से चिह्नित और तुलसी के काठ की माला से अलंकृत ब्राह्मण को देखकर जो निन्दा परायण रहा करता है, वही नरक का भागी होता है।

धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ।
नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः ।।

जो पाप बुद्धि रूप कारण वाले, तुलसी-कमल की माला को पवित्र-काल में नहीं धारण करते हैं, वे नारायण के क्रोध रूप आग से भस्म हुये नरक से नहीं छूटते हैं ।

विधिवद्ग्रथिता सूत्रे माला तुलसिजा शुभा ।
धारणीया सदा कण्ठे जपहोमार्चनादिषु ।।

शास्त्र की विधि (आज्ञा) वाली सूत में गुथी हुई तुलसी की सुन्दर माला को जप-होम-पूजा आदि पवित्र कालों में निरन्तर गले में धारण करना चाहिए ।

नारद पाञ्चरात्र में लिखा है—

तुलसीमालिकां चैव राज्ञां चामरछत्रवत् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा धार्यं शिखायज्ञोपवीतवत् ।।

राजाओं के चामर-छत्र की भाँति ही तुलसी की माला को धारण करना चाहिए । परन्तु, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को शिखा-यज्ञोपवीत की भाँति सदा धारण करना चाहिए ।

स्कान्द पुराण में भगवान् का वाक्य है—

तुलसीकाष्ठजां मालां कण्ठस्थां वहते तु यः ।
अथाशौचोऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ।।

और जो तुलसी के काठ की बनी हुई गले में रही हुई माला को धारण करता है, अनन्तर अपवित्र और आचार-रहित भी मनुष्य, मुझको ही प्राप्त करता है, सन्देह नहीं है ।

तुलसीमालिकां कण्ठे बिभर्ति जनपावनीम् ।
स पूज्यो जायते लोके श्वपाकोऽपि हि निश्चितम् ।।

चाण्डाल भी गले में मनुष्यों को पवित्र करने वाली तुलसी की माला को धारण करता है, तो, वह संसार में निश्चित ही पूज्य (आदर के योग्य) होता है ।

तुलसीमालिकाधारी पुनाति भुवनत्रयम् ।
प्रणमन्ति सुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः ।।

तुलसी की माला को धारण करने वाला, तीनों भुवनों को पवित्र करता है, उसको शिव-इन्द्र-यम आदि देवता लोग प्रणाम करते हैं ।

अब यज्ञोपवीत का उत्कर्ष लिखा जाता है--

'हारीत स्मृति' में लिखा है--

एकैकमुपवीतं तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहिणां च वनस्थानामुपवीतद्वयं स्मृतम् ।।

सन्यासियों के लिए और ब्रह्मचारियों के लिए एक-एक यज्ञोपवीत कही गयी है। गृहस्थों के लिए और वानप्रस्थों के लिए यज्ञोपवीत दो कही गई हैं।

सोत्तरीयं तृतीयं वा बिभृयाच्छुभ्रतन्तुना।
आश्रमाणां चतुर्णां तु यज्ञसूत्रं विधीयते ।।

चतुर्थ आश्रम वालों के लिए तो सुन्दर सूत से निर्मित उत्तरीय के सहित ही तीन यज्ञ सूत्र विधान किये गये हैं, अतः तीन ही धारण करे।

वैसा ही भृगु स्मृति में कहा है--

यज्ञसूत्रं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते।
एकमेव यतीनां स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ।।

ब्रह्मचारी के लिए एक यज्ञ सूत्र (जनेऊ) और दूसरे दोनों गृहस्थ-वानप्रस्थ के लिए दो यज्ञसूत्र कहे गये हैं। सन्यासियों के लिए एक ही यज्ञसूत्र होवे--इस प्रकार धर्म चारों आश्रमों के लिए व्यवस्थित है।

पञ्चैव पुत्रकामस्तु धर्मकामस्तथैव च ।
आयुष्कामी सदा कुर्यात् बहुयज्ञोपवीतकम् ।।

पुत्र की कामना वाला और वैसा ही धर्म की कामना वाला पाँच-यज्ञोपवीत को ही धारण करे। आयु की कामना वाला सदा बहुत यज्ञोपवीत को धारण करे।

सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा।
यज्ञसूत्रं नवीनं तु धारयेन्मनुरब्रवीत् ।।

सन्तान उत्पन्न होने पर, मर जाने पर, बाल बनवाने पर तथा चाण्डाल के स्पर्श करने पर नवीन यज्ञसूत्र को धारण करे—ऐसा मनु ने कहा है।

श्वानरासभसंस्पर्शो म्लेच्छादीनां तथैव च।
मेहने वाऽथवाज्ञानान्नाबिकं वा स्पृशेद्यदि ।।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति कर्मणा द्विजसत्तमाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धार्यं स्नात्वोपवीतकम् ।।

हे श्रेष्ट ब्राह्मणो ! कुत्ते-गदहों से छू जाने पर और वैसे ही मुसलमान आदिकों के स्पर्श कर लेने पर अथवा स्त्री के साथ संभोग करने पर अथवा अज्ञान से मल्लाह को यदि छू लेवे तो, उसी क्षण कर्म से नष्ट हो जाते हैं; तिस हेतु से सम्पूर्ण प्रयत्न के द्वारा स्नान करके यज्ञोपवीत को धारण करना चाहिये ।

योन धारयते विप्रो ब्रह्मसूत्रं विधानतः ।
तपो ज्ञानं भवेत्तस्य सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥

जो ब्राह्मण, शास्त्र के विधान (आज्ञा) से यज्ञोपवीत को नहीं धारण करता है, उसके तप, ज्ञान और सब कर्म निष्फल हो जाते हैं ।

पतितं त्रुटितं वाऽपि ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ।
नूतनं धारयेद्विप्रः स्नानसंकल्पपूर्वकम् ॥

ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत), जब शरीर से नीचे गिरा हुआ अथवा टूटा हुआ होवे, तब ब्राह्मण, स्नान-संकल्प पूर्वक (पहले करके) नवीन यज्ञोपवीत को धारण करे ।

परित्यजन्ति ये विप्रा मोहात्तर्कावलम्बिनः ।
स्वर्गापवर्गमार्गाभ्यां प्रच्युतास्ते न संशयः ॥

तर्क को अवलम्बन करने वाले जो ब्राह्मण, अज्ञान से जनेऊ को परित्याग कर देते हैं, वे स्वर्ग-मोक्ष के मार्गों से गिर जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है ।

ब्रह्मसूत्रपरित्यागात् ब्रह्मचारी गृही वनी ।
परिव्राडपि पतति तस्मात्तन्न परित्यजेत् ॥

ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्यासी भी यज्ञोपवीत के परित्याग कर देने से स्वरूप से गिर जाते हैं, तिस हेतु से उस यज्ञसूत्र को नहीं परित्याग करे ।

पाराशर स्मृति में लिखा है—

दशाष्टौ च गृहस्थस्य चत्वारि वनवासिनाम् ।
एकमेवोपवीतं स्याद्यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

गृहस्थ के अट्ठारह यज्ञोपवीत और वनवासियों के अर्थात् वानप्रस्थ आश्रमियों के चार यज्ञोपवीत एवं ब्रह्मचारियों तथा सन्यासियों के एक ही यज्ञोपवीत होनी चाहिए ।

यज्ञसूत्रद्वयं धार्यं ब्राह्मणेन विधानतः ।
तृतीयं तूत्तरीयार्थं वस्त्राभावे चतुर्थकम् ॥

ब्राह्मण को शास्त्र के विधान (आदेश) से दो यज्ञपवीत धारण करनी चाहिये। परन्तु, उत्तरीय (चादर) के लिए तीन और वस्त्र के अभाव रहने पर चार यज्ञोपवीत धारण करनी चाहिए।

कण्ठादिनाभिपर्यन्तं यज्ञसूत्रं पवित्रकम्।
न्यूने रोगप्रवृत्तिः स्यादधिके धर्मनाशनम्॥

यज्ञ सूत्र (जनेऊ) कण्ठ से लेकर नाभी पर्यन्त पवित्र है। कम रहने पर रोगों की प्रवृत्ति होगी और अधिक होने पर धर्म का नाश होगा।

सूतके मृतके चौरे चाण्डालस्पर्शने तथा।
यज्ञसूत्रं नवीनस्य धारणं मनुरब्रवीत्॥

सन्तान उत्पन्न होने पर, मर जाने पर, क्षौर कराने पर तथा चाण्डाल के स्पर्श कर लेने पर नवीन यज्ञोपवीत का धारण करना मनु ने कहा है।

'स्मृति रत्नाकर' में लिखा है—

नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधस्ताद्धर्मनाशनम्।
तस्मान्नाभिसमं धार्यमिति वेदविदो विदुः॥

नाभी से ऊपर यज्ञोपवीत आयु का नाश करने वाला होता है, नाभी से नीचे धर्म का नाश करने वाला होता है; तिस हेतु से नाभी के समान (बराबर धारण करना चाहिए—ऐसा वेदों के जानने वाले जानते हैं।

तन्तुत्रयमूर्ध्वगतं तन्तुत्रयमधः स्थितम्।
त्रिवृच्च ग्रन्थिनैकेन उपवीतमिहोच्यते॥

तीन सूत ऊपर गए हुए और तीन सूत नीचे रहे हुए तथा तीन वृत्त वाली एक ग्रंथि से युक्त यज्ञोपवीत इस लोक में कही जाती है।

इसके अनन्तर आचमन की विधि हारीत स्मृति में कही गई है—

आचम्यातः परं मौनी प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः।
नामभिः केशवाद्यैश्च यथा संख्यमुपस्पृशेत्॥

इसके बाद मौन होकर पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख होकर आचमन करके जैसे संख्या (गिनती के अनुसार) केशव आदि बारह नामों से अंगों को स्पर्श करे।

द्विराचामेच्च सर्वत्र विण्मूत्रोत्सर्जने त्रयम्।
पवित्रपाणिराचम्य पश्चात्सन्ध्यां समाचरेत्॥

सम्पूर्ण वैदिक कर्मों में दो बार आचमन करे, परन्तु मल-मूत्र त्याग करने पर तीन बार आचमन करे। पवित्र हाथ होकर आचमन करके पीछे सन्ध्या करे।

सन्ध्या भाष्य में लिखा है—

गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमग्नं जलं पिबेत् ।
तन्न्यूनमधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत् ॥

गौ के कान के आकार वाले हाथ से उड़द जितने जल में डूब जावे, उतने जल को आचमन में पिये। उससे कम-अधिक पीकर मदिरा पीने के समान होगा।

अङ्गुष्ठाग्रं समाकुंच्य मध्यमामध्यपर्वणि ।
गोकर्णं तद्धि विज्ञेयं सर्वेष्वाचमनेषु च ॥

बीच वाली उँगली के बीच पर्व (गिरह) में अँगूठे के अग्रभाग को मोड़कर उसी को सब आचमनों में गोकर्ण जानना चाहिए।

तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगे राक्षसी मुद्रिका भवेत् ।
राक्षसीमुद्रिकादत्तं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥

तर्जनी (अँगूठे के पास वाली उँगली) और अँगूठे के संयोग होने पर राक्षसी मुद्रिका होती है। राक्षसी मुद्रिका से दिया हुआ वह जल रुधिर के समान अशुद्ध हो जाता है।

पूर्वाचमनममृतं सोमपानमथोत्तरम् ।
दक्षिणे रक्तपानं तु सुरापानं तु पश्चिमे ॥

पूर्व दिशा में मुख करके आचमन करना अमृतवत् माना गया है, अनन्तर उत्तर दिशा में मुख करके आचमन करना सोम रस पीने के समान माना गया है और दक्षिण दिशा में मुख करके आचमन करना रक्त पीने के समान माना गया है तथा पश्चिम दिशा में मुख करके आचमन करना मदिरा पीने के समान माना गया है।

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासाग्रकरपीडनम् ।
ॐकारमुद्रा सा प्रोक्ता यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥

कनिष्ठा, अनामिका और अँगूठे के द्वारा नाक के आगे भाग को हाथ से दबाना ॐकार मुद्रा वह सन्यासी और ब्रह्मचारी के लिये कही गई है।

पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रपीडनं प्रणवाभिधम् ।
मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥

पाँचों अँगुलियों से नाक के आगे भाग को दबाना प्रणव नामक मुद्रा यह सब पापों को नाश करने वाली वानप्रस्थ-गृहस्थों के लिये कही गई है।

पाञ्चरात्र की बृहद्ब्रह्म संहिता में लिखा है—

रेतोमूत्रशकृन्मोक्षे ह्यधो वायुविमोक्षणे ।
परिश्रमेऽनृते हासे उच्छिष्टजनसंगमे ॥
उच्छिष्टस्पर्शनेऽमेध्यदर्शने चाश्रुपातने ।
रक्तकेशमलस्पर्शे जृंभायां स्वप्नदर्शने ॥
हिक्काष्ठीवनसंक्रोधे स्वाचम्य शुचिकाम्यया ।
उपक्रमोपसंहारे कर्मणो नीविबन्धने ।
केशवादिभिराचम्य सद्यः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

वीर्य-मूत्र-मल के त्याग करने पर और नीचे से वायु के छोड़ने पर, परिश्रम करने पर, झूठ बोलने पर, हँसने पर, जूठे मुंह वाले मनुष्य के संगम होने पर, जूठे के छूने पर, अपवित्र वस्तु के देखने पर तथा आँसुओं के गिराने पर, रक्त-केश-बिष्ठा के छूने पर, जमुहायी आने पर, स्वप्न के देखने पर, हिचकी-थूकने-क्रोध होने पर पवित्र होने की कामना से अच्छी तरह आचमन करके कर्म के आरम्भ और समाप्त होने पर, नीवी (नाभी के नीचे) बांधने पर केशव आदि बारह नामों से आचमन करके तुरन्त शुद्धि (पवित्रता) को प्राप्त करे ।

अकृत्वाऽऽचमनं विप्रो न कर्मफलभाग्भवेत् ।
यथाभिषेकजा शुद्धिर्बहिरेव प्रजायते ॥

ब्राह्मण, आचमन न करके कर्मों के फल का भागी नहीं होगा । जैसे स्नान से उत्पन्न शुद्धि (पवित्रता) बाहर ही होती है ।

मन्त्रपूतजलैस्तद्वदाचम्य ह्यन्तरा शुचिः ।

उसी प्रकार मन्त्र के द्वारा पवित्र जलों से आचमन करके ही भीतरी पवित्रता होती है ।

इत्यादि पवित्र आचरण से युक्त वैष्णव को कहा गया है; दूसरे को नहीं । वसिष्ठ स्मृति में कहा है—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥

शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष—छः अंगों के साथ यद्यपि (चूंकि) वेदों का अध्ययन कर लिया है, तथापि वे वेद आचरण से रहित पुरुष को नहीं पवित्र करते हैं । वेद इसको मरने के समय वैसे ही त्याग कर देते हैं, पंख उत्पन्न हो जाने वाले पक्षीगण (खोंते) को जैसे त्याग कर देते हैं ।

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम्।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ।।

चारों वर्णों का भी आचरण धर्म का पालन करना है; अशुभाचरण से भ्रष्ट शरीर वालों के लिए धर्म विमुख हो जाता है।

भ्रष्टो यस्स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते।
समुल्लंघ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ।।

जो अपने आश्रम के आचरण से भ्रष्ट हो जाता है, वह पतित कहा जाता है। श्रेष्ठ आचरण को उल्लंघन करके कोई शोभा को नही प्राप्त करता।

नारदीय पुराण में कहा है—

धिग्जन्माचाररहितं जन्मधिग्ज्ञानवर्जितम्।
शूद्रेऽपि दृश्यते वृत्तं ब्राह्मणे न तु दृश्यते ।।

जन्म के आचरण से रहित को धिक्कार है, ज्ञान से रहित जन्म वाले को धिक्कार है। शूद्र में भी सदाचार देखा जाता है; परन्तु ब्राह्मण में सदाचार नहीं देखा जाता है।

शूद्रोऽपि ब्राह्मणो ज्ञेयो ब्राह्मणः शूद्र एव सः।

शूद्र भी सदाचार से युक्त रहा हुआ ब्राह्मण जानने योग्य है और वह ब्राह्मण सदाचार से रहित शूद्र ही है।

बृहस्पति स्मृति में लिखा है—

शौर्यवीर्यादिरहितस्तपोज्ञानविवर्जितः।
आचारहीनः पुत्रस्तु मूत्रोच्चारसमः स्मृतः ।।

शूरता-वीरता आदि गुणों से रहित, तप ज्ञान से वर्जित और आचरण-हीन पुत्र, मल-मूत्र के समान कहा गया है।

भगवान् का वचन है—

श्रुतिः स्मृतिर्ममैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्रोही न भक्तो न च वैष्णवः ।।

वेद-धर्मशास्त्र मेरी ही आज्ञा है, जो उसे उल्लंघन करके रहता है, वह मेरी आज्ञा का काटने वाला और मेरा द्रोही है। अतः वह न मेरा भक्त है और न वैष्णव है।

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिते।
एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धस्तथैव च ।।

ब्राह्मण के वेद-धर्मशास्त्र दोनों नेत्र कहे गये हैं; एक से रहित काना उसी प्रकार दोनों से रहित अन्धा है।

श्रीमद् भगवद् गीता में कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

जो शास्त्र की आज्ञा को त्याग करके मनमाना इच्छानुसार रहा करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता है, न सुख को और न मोक्ष को प्राप्त करता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

तिस हेतु से शास्त्र-प्रमाणानुसार तेरे लिए कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्थिति में शास्त्र के आदेश से कहे गये कर्म को जानकर इस लोक में करने के योग्य है।

तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना सन्ध्योपास्तिं समाचर।
ततः संमार्जयित्वा च पश्चादाचमनं चरेत् ॥

तिस हेतु से शास्त्र में कही गई विधि से सन्ध्या-उपासन करो। और तिस कारण स्नान करके पीछे आचमन करे।

गायत्र्याऽर्घ्यं प्रदद्याच्च जपं कुर्वीत भक्तिमान्।
आचम्य तर्पयेद्देवान् पितॄनपि विधानतः ॥

भक्ति से युक्त पुरुष, गायत्री से अर्घ्य देवे और जप करे। आचमन करके देवों को और पितृ लोगों को भी शास्त्र विधान से तर्पण करे।

वैकुण्ठपार्षदान् पश्चात्तर्पयेच्च यथाविधि ।
कुशासने समाविश्य पुण्ड्रं कुर्याद्यथा विधि ॥

कुश के आसन पर बैठकर जैसी शास्त्र में विधि (आज्ञा) है, तदनुसार ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक करे, फिर जिस प्रकार शास्त्र में विधि (आदेश) हो, पीछे वैकुण्ठ के पार्षदों को तर्पण करे।

ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्।
उपस्थानं ततः कृत्वा नमस्कुर्यात्ततो हरिम् ॥

सूर्य के मण्डल के बीच में नारायण देव को ध्यान करके तदनन्तर उपस्थान करके तत्पश्चात् नारायण को नमस्कार करे।

इसके बाद आश्रम-धर्म कहे जाते हैं—

हारीत स्मृति में कहा है—

मौंजी मेखलया दण्डं पालाशं ब्रह्मचारिणः ।
त्रयस्तु वैष्णवादण्डा यतेः काषायवाससो ।।

ब्रह्मचारी के लिए मुञ्ज की बनी हुई मेखला के साथ पलाश का दण्ड कहा गया है; परन्तु काषाय वस्त्र वाले (गेरू से रंगे वस्त्र वाले) सन्यासी के लिये विष्णु सम्बन्धि दण्ड तीन कहे गये हैं।

कुशचीरं वल्कलं वा वनस्थस्य विधीयते ।
कटिसूत्रं च कौपीनमहते शुक्लवाससो ।।

वानप्रस्थ आश्रम वाले के लिये कुश का वस्त्र या वृक्ष के छाल (त्वचा) का बना वस्त्र विधान किया गया है। महान् पुरुष के लिये कटिसूत्र और कोपीन एवं सफेद वस्त्र कहा गया है।

कुण्डले चाङ्गुलीयानि गृहस्थस्य विधीयते ।।

गृहस्थ के लिए दोनों कानों में कुण्डल और अँगुलियों में अँगूठियाँ विधान की गई हैं।

विवरण—छान्दस् प्रयोग के कारण उक्त श्लोक में 'विधीयते' क्रिया एक वचन लिखी गई है।

यस्त्वेकदण्डमालंब्य धर्मं ब्राह्मं परित्यजेत् ।
विकर्मस्थो भवेद्विप्रस्स याति नरकं ध्रुवम् ।।

परन्तु, जो एक दण्ड को ग्रहण करके वैदिक धर्म को परित्याग कर देता है, वह ब्राह्मण विपरीत कर्म में स्थित हो जाता है, अतः निश्चय नरक को जाता है।

शिखायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतो वै श्वाऽभिजायते ।।

सन्यासी, शिखा-यज्ञोपवीत आदि वैदिक धर्म को त्याग देवे, तो वह जीवित रहता हुआ ही चाण्डाल है और मर गया तो, निश्चय कुते का जन्म पाता है।

कर्मणां फलसंत्यागः सन्यासः समुदाहृतः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च गृहस्थस्य विशेषतः ।।

चारों आश्रमों के और विशेष रूप से गृहस्थ के कर्मों के फलों का सम्यक्प्रकार से त्याग कर देना 'सन्यास' कहा गया है।

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पिता ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ।।

शरीर-मन-वाणी रूप करणत्रय से किसी को दुःख न देना, सत्य बोलना, सकल प्राणियों पर अनुकम्पा करना, अन्तःकरण की वृत्ति को रोकना, यथाशक्ति दान करना—गृहस्थ का धर्म कहा जाता है।

स्वधर्मकर्मार्जितजीवितानां स्वीयेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम् ।।

अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों के कर्मों से अर्जित (कमाये हुए) के द्वारा जीवित रहने वाले, अपनी स्त्री में सदा प्रेम करने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, अभ्यागत प्रिय वाले, श्रेष्ठ पुरुषों का घर में भी मोक्ष (संसार कारागार से छुटकारा) होता है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

गृहेष्वाविशतां वाऽपि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ।।

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले, मेरे विषय में वार्ता के द्वारा पहर रूप समयों को व्यतीत करने वाले, कल्याण कर्म करने वाले मनुष्यों के भी बन्धन के लिए घर नहीं माने गये हैं।

इसके अनन्तर स्त्रियों के धर्म लिखे जाते हैं—

अन्तः कच्छं बहिः कच्छं द्विविधं परिकीर्तितम्।
ब्राह्मणीप्रभृतीनां वै अवश्यं मनुरब्रवीत् ।।

ब्राह्मणी आदि स्त्रियों के लिए भीतर कच्छा बाँधना और बाहर कच्छा बाँधना—दो प्रकार कहे गये हैं; इस प्रकार अवश्य ही मनु ने कहा है।

गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीणां चैव विशेषतः।
कच्छहीनेन यत्कर्म कुर्यात्तन्निष्फलं भवेत् ।।

गृहस्थ और वानप्रस्थ स्त्रियों के लिए ही विशेष रूप से कहा है, कच्छा से रहित रूप से जिस कर्म को करेगा, वह निष्फल हो जायगा।

ब्राह्मणस्य तु या नारी कच्छहीना भवेद्यदि।
गर्हिता सर्वकर्मभ्यः पतत्येव न संशयः ।।

ब्राह्मण की जो स्त्री, यदि कच्छा से रहित होवे तो, सब कर्मों से निन्दिता होकर निश्चय पतित हो जाती है, सन्देह नहीं है।

ऋतुकाले तु या नारी कच्छेन सहिता यदि ।
रौरवे नरके घोरे पतिता सा न संशयः ।।

जो स्त्री रजस्वला के समय यदि कच्छा के सहित होवे, तो, वह भयंकर रौरव नरक में गिर गई। सन्देह नहीं है।

शूद्रादिकानां स्त्रीणां च कन्यादीनां च सर्वदा ।
असंस्कृतानां नारीणामकच्छं मनुरब्रवीत् ।।

शूद्र आदिकों की स्त्रियों के और कन्या आदिकों के तथा बिना संस्कार वाली स्त्रियों के कच्छा-रहित सब काल में रहना मनु ने कहा है।

पाञ्चरात्र की अनन्त संहिता में कहा है—

स्त्रीणां तु भर्तृहीनानां वैष्णवीनां वसुन्धरे ।
यावच्छरीरपातं वै प्रशस्तं केशधारणम् ।।

हे पृथ्वि ! भर्त्तार से रहित वैष्णवी स्त्रियों के लिए तो जब तक शरीरपात अर्थात् जब तक जीवित रहे, निश्चय केश का धारण करना प्रशंसा है।

न कार्यं केशवपनं वैष्णव्या भर्तृहीनया ।
यद्यज्ञानात् करोत्येषा तन्मुखं नावलोकयेत् ।।

भर्त्तार से रहित वैष्णवी को केश का मुण्डन नहीं कराना चाहिए यदि यह वैष्णवी अज्ञान से कराती है तो, उसके मुख को नहीं देखे।

पाञ्चरात्र की 'विजय संहिता' में भगवान् का वचन है—

प्रपन्ना पतिना हीना या नारी केशधारिणी ।
तस्यास्तद्धारणे ब्रह्मन्न दोषोऽस्तीति मे मतिः ।।

जो स्त्री नारायण की शरणागता पति से रहित केश को धारण करने वाली है, तो हे ब्रह्मन् ! उसके उस केश के धारण करने में दोष नहीं है—यह मेरी सम्मति है।

नारद पाञ्चरात्र की खगेश्वर (गरुड़) संहिता में लिखा है—

सकच्छं वर्णिनं भिक्षुमकच्छं गृहमेधिनम् ।
सकेशां विधवां दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।।

कच्छा के सहित कहे जाने वाले सन्यासी को और कच्छा से रहित गृहस्थ को तथा केश के सहित विधवा को देखकर वस्त्र के सहित स्नान करे।

प्रयोजनान्तराशक्त्या विधवा वापयेच्छिरः ।
मुमुक्षुर्यदि सा तस्या वपनं तु निषिद्ध्यते ।।

भगवत्प्राप्ति रूप प्रयोजन को छोड़कर दूसरे प्रयोजन वाली, अशक्ति (असमर्थता) से विधवा स्त्री शिर को मुण्डन करावे। वह विधवा स्त्री यदि मुमुक्षु [त्रिपाद्विभूति महा वैकुण्ठ में सदा रहने वाले नारायण की प्राप्ति के लिए संसार कारागार से मुक्त होने की इच्छा वाली] होवे, तो उस विधवा स्त्री को मुण्डन कराना निषेध किया गया है।

यह कुछ लोगों का मत है। शास्त्रों में सर्वत्र सभी विधवाओं का मुण्डन कराने का विधान है। आचार भी है।

इसके अनन्तर ब्राह्मण वर्ण वाले वैष्णवों का सर्वाङ्ग क्षौर कराने की प्रशंसा लिखी जाती है। 'आपस्तम्ब' गृह्यसूत्र के वैश्वदेव खण्ड की तित्तिरि शाखा में लिखा है—

"केशश्मश्रून् वपते नखानि निकृन्तते दतो धावते स्नाति अहतं वासः परिधत्ते पाप्मनोपहत्यै इत्यादि श्रुतिः।"

पापों के नाश के लिये ब्राह्मण श्रीवैष्णव, केशों और दाढ़ी-मूछों को मुड़वाते हैं, नखों को कटवाते हैं, दन्त धावन से दाँतों को साफ करते हैं, स्नान करते हैं, नवीन वस्त्रों को धारण करते हैं इत्यादि श्रुति हैं।

स्मृति भी कहती है—

ब्राह्मणो वैष्णवो वाऽपि श्मश्रुधारी भवेद्यदि।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतश्च श्वाऽभिजायते॥

ब्राह्मण अथवा वैष्णव यदि दाढ़ी-मूछ रखने वाला होवे तो, वह जीवित रहता हुआ ही चाण्डाल है और मर गया तो, कुत्ते का जन्म पाता है।

अनन्तर 'आपस्तम्ब' गृह्यसूत्र में नमस्कार का नियम कहा है—

समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकः।
जपं होमं च कुर्वाणो नाभिवाद्यो द्विजो बुधैः॥

ज्ञानी पुरुषों को, होम की समिधा (एक-एक बित्ते की आम की सूखी लकड़ियाँ)-फूल-कुशा-आग-जल-मिट्टी-अन्न-अक्षत (चावल) हाथों में लिये हुए को और जप-हवन करते हुए ब्राह्मण को नहीं अभिवादन (साष्टाङ्ग-प्रणाम) करना चाहिये।

वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम्।
अभ्यक्तशिरसं चैव स्नान्तं नैवाभिवादयेत्॥

वमन करते हुए को और जमुहाई लेते हुए को, दतवन करते हुए को, मस्तक में तैल लगाते हुए को और स्नान करते हुए को नहीं अभिवादन (साष्टाङ्ग-प्रणाम) करे।

प्राक्पाणिकमनाज्ञातमशक्तं रिपुमातुरम् ।
योगिनं च तथाऽशक्तं कनिष्ठं नाभिवादयेत ।।

पूर्व दिशा में हाथ जोड़े हुए को, नहीं जाने हुए को, नहीं सामर्थ्य वाले को, शत्रु को, रोगी को और योगी को तथा सामर्थ्य रहित को, अपने से छोटे को नहीं साष्टाङ्ग प्रणाम करे ।

पाखण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम् ।
नास्तिकं च कृतघ्नं च नाभिवादेद्द्विजोत्तमः ।।

ब्राह्मणोत्तम (उत्तम ब्राह्मण), पाखण्डी को, पतित को, संस्कार-रहित को, महा पातकी को, शठ (कुटिल हृदय वाले) को और नास्तिक (ईश्वर-वेद के नहीं मानने वाले) को तथा कृतघ्न (किये हुये उपकार के नहीं मानने वाले) को नहीं प्रणाम करे ।

धावन्तं च प्रमत्तं च मूत्रोच्चारकरं तथा ।
भुंजानमातुरं साहं नाभिवादेद्द्विजोत्तमम् ।।

दौड़ते हुए को और प्रमत्त (अत्यन्त मतवाले) को एवं मल-मूत्र त्याग करते हुए को, भोजन करते हुए को, आतुर (रोगी) को तथा अहंकार सहित ब्राह्मणोत्तम को नहीं अभिवादन (प्रणाम) करे ।

अश्रोत्रियं कृतघ्नं चाब्रह्मण्यं स्वर्णहारिणम् ।
पौनर्भवं देवलकं गर्भसंस्कारवर्जितम् ।।
अन्यांश्च पतितान् विप्रान्नाभिवादेद्द्विजोत्तमः ।।

उत्तम ब्राह्मण, वेदों के अध्ययन के अधिकार से रहित शूद्र को और कृतघ्न (किये हुए उपकार को नहीं मानने वाले) को, अब्राह्मणों के समूह को, सुवर्ण की चोरी करने वाले को, वर्ण संकर (दोगले) को, देवताओं के नाम से आजीविका करने वाले को, गर्भ-संस्कार से रहित वाले को और दूसरे पतित विप्रों को नहीं प्रणाम करे ।

धावन्तं जलमध्यस्थं दूरस्थं धनगर्वितम् ।
देहाभिमानिनं चैव नाभिवादेत् कदाचन ।।

दौड़ते हुये को, जल के मध्य में रहे हुए को, दूर में रहे हूए को, धन के गर्व वाले को और देह के अभिमानी को कभी नहीं प्रणाम करे ।

इत्यादि श्रुति-स्मृतियों में कहे गये श्रेष्ठ धर्म के प्रतिपादन करने के योग्य स्वीकार किये हैं लीला के लिए मानव शरीर जिन्होंने—ऐसे श्रीशठकोप स्वामी और

श्री रामानुज स्वामी हुये हैं। विष्वक्सेन संहिता में लिखा है—नारायण के प्रति विष्वक्सेन जी का वचन है –

भूम्यां कृतावतारोऽहं सर्वानेताञ्जनान् दृढम् ।
प्रापयिष्यामि वैकुण्ठं नात्र कार्या विचारणा ।।

मैं पृथ्वी पर अवतार धारण किया हूँ; दृढ़तापूर्वक इन सभी मनुष्यों को वैकुण्ठ प्राप्त कराऊँगा—इस विषय में विचार नहीं करने के योग्य है।

एवं कृतप्रतिज्ञोऽथ कुरुकानगरे भुवि ।
शठकोप इति ख्यातो जज्ञे कारिसुतो महान् ।।

इसके अनन्तर इस प्रकार की गई प्रतिज्ञा वाले, पृथ्वी पर कुरुका नगर में महान् कारि के पुत्र 'शठकोप'—इस नाम से प्रसिद्ध जन्म लिये।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है—

दत्तात्रेयः कृतयुगे त्रेतायां रघुनन्दनः ।
लोकसंरक्षणार्थाय नैष मानुषमात्रकः ।।

सत्य युग में दत्तात्रेय और त्रेता में राम हुए। प्राणियों की सम्यक्प्रकार से रक्षा के लिये यह मनुष्य मात्र नहीं हुये।

उसी प्रकार श्रीरामानुज स्वामी भी हुए।

श्रीमद्भागवत में कहा है—

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ।
क्वचित्क्वचिन्महाराज द्राविडेषु च भूरिशः ।।

हे महाराज! कलियुग में निश्चय नारायण के परायण रहने वाले कहीं-कहीं, किन्तु द्रविड़ देशों मे बहुत होंगे।

ताम्रपर्णीनदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।।

जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी नदियाँ हैं और महा पवित्र कावेरी तथा महानदी प्रतीची है।

ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ।।

हे मनुष्यों के स्वामिन्! जो मनुष्य, उन नदियों के जल को पीयेंगे, वे अवश्य वासुदेव में निर्मल अन्तःकरण वाले भक्त हो जायंगे।

पद्म पुराण के पूर्व खण्ड में लिखा है—

पाखण्डबहुले लोके कुदृष्टिजनसंकुले ।
कलौ वैष्णवसिद्धान्तं पुनरुद्धार्यते यतिः ॥

कुत्सित दृष्टि वाले (नास्तिक) मनुष्यों के समूह होने पर पाखण्ड फैले हुए संसार में कलियुग में वैष्णव-सिद्धान्त को फिर सन्यासी श्रीरामानुज स्वामी उद्धार करेंगे ।

अनन्तं प्रथमं नाम द्वितीयं लक्ष्मणं तथा ।
तृतीयं बलरामं च कलौ रामानुजो यतिः ॥

पहला नाम अनन्त तथा दूसरा नाम लक्ष्मण और तीसरा नाम बलराम और कलि में सन्यासी रामानुज स्वामी होंगे ।

'प्रपन्नामृत' नामक ग्रन्थ में भी लिखा है—

पाखण्डबौद्धचार्वाकैस्त्रयीधर्मो विलोपितः ।
दत्तात्रेय स्वरूपेण लोके पाखण्डसंकुले ॥
त्रिदण्डधारिणा पूर्वं विष्णुना रक्षिता त्रयी ।

पाखण्डी बौद्ध-चार्वाकों के द्वारा संसार में पाखण्डियों के समूह हो जाने पर ऋग्यजुः साम—तीनों वेदों का धर्म जब विलोपित हो गया था तब पहले विष्णु ने त्रिदण्डधारी दत्तात्रेय स्वरूप से ऋग्यजुः साम—तीनों वेदों के धर्मों की रक्षा की थी ।

विष्णोस्तु पार्षदास्त्वद्य शेषशेषाशनादयः ।
अवतीर्णास्तु ते क्षित्यां दत्तात्रेयादयो यथा ॥

इस कलियुग में विष्णु के पार्षदगण वे शेष और गरुड पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं; जैसे दत्तात्रेय आदि अवतीर्ण हुए थे ।

स्वेच्छाविहारिणस्ते च न कर्मवशवर्तिनः ।

और वे पार्षदगण, अपनी इच्छा से विहार करने वाले हैं; कर्मों के वश में रहने वाले नहीं हैं ।

श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

हे भरत वंश में उत्पन्न अर्जुन ! जब-जब ही धर्म की ह्रासता होती है और अधर्म की उन्नति होती है, तब मैं अपने शरीर को इच्छा से उत्पन्न करता हूँ ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

शरणागतों की सब प्रकार से रक्षा करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों के (शरणागतों के विरोधियों के) बिनाश करने के लिये तथा भागवत धर्म को सम्यक्प्रकार से स्थापन करने के लिए युग-युग में अवतार लेता हूँ ।

भार्गव पुराण में ब्रह्म राक्षस का वचन है—

महासूर्यान्वये पुण्ये केशवस्य त्रिपाठिनः ।
जज्ञे पुण्यवतः पुत्रोऽनन्तांशोऽनन्ततेजसा ॥

पवित्र बड़े ज्ञानी के वंश में पुण्यवान् ऋग्यजुष्साम—तीनों वेदों के पढ़ने वाले केशव का पुत्र अनन्त तेज के साथ अनन्त का अंश जन्म लिया ।

तस्य रामानुज इति पिता नामाकरोन्मुदा ।
सर्वचेतनरक्षार्थमवतीर्णो दयानिधिः ॥

पिता ने हर्ष के साथ उनका 'रामानुज'—यह नाम किया । दयानिधि ने सब जीवों की रक्षा के लिये अवतार धारण किया ।

एनं शेषांशसंभूतं रामानुजमुनिं बिना ।
नान्यः पुमान् समर्थः स्यान्मज्जन्मेदं निवारितुम् ॥

इन शेष के अंश से उत्पन्न रामानुज मुनि के बिना दूसरा पुरुष इस मेरे जन्म को छुड़ाने के लिये समर्थ नहीं है ।

तस्माद्यतीन्द्रसामर्थ्यमीश्वरस्यापि नास्ति हि ।
यतो यतीन्द्रसंबन्धात्पापात्मा ह्यपि मुक्तिभाक् ॥

तिस हेतु से यतीन्द्र (सन्यासियों के स्वामी श्री रामानुजाचार्य) का सामर्थ्य ईश्वर का भी निश्चय, नहीं है; क्योंकि यतीन्द्र के सम्बन्ध से पापात्मा भी मुक्ति का पात्र बन जाता है ।

तस्मादयं लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः साक्षाद्धरिर्लोकगुरुर्महात्मा ।
तस्यैव संबन्धबलेन तेन मोक्षो हि सिद्धो निखिलात्मनां च ॥

तिस हेतु से यह महात्मा सकल प्राणियों के गुरु प्रत्यक्ष नारायण लक्षमण (रामानुज) ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य हैं; उनके ही उस सम्बन्ध के बल से सकल प्राणियों का मोक्ष सिद्ध हैं ।

ततो निर्विद्य संसाराच्छ्रेयसे देशिकाश्रिताः ।
तत्रापि द्विविधाः प्रोक्ताः प्रपन्ना भक्तिभेदतः ।।

तिस हेतु से नारायण की प्राप्ति रूप कल्याण के लिये संसार से वैराग्य पाकर ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु के आश्रित (शरणागत) होने चाहिये । उनमें भी भक्ति के भेद से दो प्रकार वाले प्रपन्न (नारायण के शरणागत) कहे गये हैं।

उन दोनों के मध्य में पहले भक्ति का लक्षण कहा जाता है—पद्म पुराण में लिखा है—

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शंखचक्रांकनं हरेः ।
धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः ।।

परन्तु पहले नारायण के शंख-चक्र चिह्न को धारण करना वैष्णवत्व कहा गया है । और उन ऊर्ध्वपुण्ड्र और विष्णुमन्त्रों का ग्रहणपूर्वक धारण करना भी वही है ।

कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पादसेवनम् ।
तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ।।

नारायण के गुणों का कीर्तन करना और सुनना, साष्टाङ्ग प्रणाम करना, उनके चरणोदक का पान करना तथा उन नारायण के भोग लगे हुए का भोजन करना चाहिये ।

तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम् ।
तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।।
भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये ।

उन श्रीपति नारायण के दासों की सेवा करना तथा द्वादशी व्रत में निष्ठित रहना और तुलसी का रोपना—संसार के बन्धन से छूटने के लिए शार्ङ्ग धनुष वाले देवों के देव विष्णु की सोलह प्रकार की भक्ति कही गई है ।

भागवत पुराण में लिखा है—

स्मरणं कीर्तनं विष्णोः श्रवणं पादसेवनं ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

नारायण का स्मरण करना, कीर्तन करना, श्रवण करना, चरणों की सेवा करना, अर्चना करना, साष्टाङ्ग प्रणाम करना, दासता करना, सखा-भाव मानना, आत्मा को समर्पण कर देना ।

इति पुंसापिता विष्णोर्भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

इस प्रकार पुरुष से अर्पित नव लक्षण वाली यदि भगवान् में निश्चय रूपा विष्णु की भक्ति की जाती है तो, उसको उत्तम अध्ययन किया हुआ मानता हूँ।

हारीत स्मृति में भी लिखा है—

शंखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः।
तन्नामकीर्तनं चैव तन्निवेदितभोजनम् ॥

शंख-चक्र-ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिकों का धारण करना, नारायण का स्मरण करना और उनके नामों का कीर्तन करना एवं उनके निवेदित अन्न का भोजन करना।

तत्पादवन्दनं चैव तत्पादाम्बुनिषेवणम्।
एकादश्युपवासश्च तुलस्या अर्चनं हरेः ॥
तदीयानामर्चनं च भक्तिर्नवविधा स्मृता।

और उन नारायण के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करना तथा उनके चरणोदक का सेवन करना अर्थात् पीना एवं एकादशी के दिन उपवास करना, तुलसी से नारायण की अर्चना करना और उन नारायण के दासों की पूजा करना—नव प्रकार की भक्ति कही गई है।

इस प्रकार साधन रूपा भक्ति कही गई। अनन्तर सिद्ध रूपा भक्ति लिखी जाती है—

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र कुत्रचित्।
अविच्छिन्ना स्मृतिर्या वै सा सिद्धा परिकीर्तिता ॥

बैठा हो या सोया हो अथवा जहाँ कहीं खड़ा हुआ ही हो, जो निश्चय विच्छेद रहित स्मृति (ध्यान) हो, वह सिद्धा भक्ति कही गई है।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥

नारायण को निरन्तर स्मरण करना चाहिये, कभी नहीं भूलना चाहिए। (वेद और शास्त्रों में प्रतिपादित) सभी विधि और निषेध इन दोनों के ही शेष हैं। अर्थात् विष्णु का स्मरण ही मुख्य शास्त्रार्थ है।

इसके अनन्तर आर्त्त प्रपन्न का लक्षण कहा जाता है—

श्रीशानुभवप्रत्यूहं देहस्थितिं दुखावहाम् ।
त्वरया प्राप्तिमीशान निरवद्यतया पुनः ।।

आर्त्त प्रपन्न, लक्ष्मी के पति नारायण के अनुभव का विघ्न स्वरूप दुःखों को बढ़ाने वाली शरीर के रहने को जाने । फिर त्वरापूर्वक दोषों से रहित रूप से स्वामी की प्राप्ति को चाहे ।

हेयमिदं शरीरं तु तव कैङ्कर्यरोधिनम् ।
शीघ्रमेव जहि स्वामिन् प्रार्थनार्तेति कथ्यते ।।

त्यागने योग्य यह शरीर है और तुम्हारे कैङ्कर्य के लिये रुकावट डालने वाला है । हे स्वामिन् ! शीघ्र ही नाश करो—इस प्रकार आर्त्तकी प्रार्थना कही जाती है ।

इसके अनन्तर दृप्त प्रपन्न का लक्षण लिखा जाता है—

पद्म पुराण में कहा है—

कृत्याकृत्यविवेकं च परलोकस्य चिन्तनम् ।
तत्प्राप्तिसाधनं विष्णोः स्वरूपज्ञानमेव च ।।

करने योग्य-नहीं करने योग्य कर्मों का विचार करना और परलोक का चिंतन करना, उसकी प्राप्ति का साधन विष्णु के स्वरूप का ज्ञान ही है ।

उपायभावे सन्त्यज्य कर्मज्ञानादिकं नरः ।
कुर्वन् भगवतः प्रीत्यै महाभागवतोत्तमः ।।

मनुष्य, साधन भाव में कर्म ज्ञान आदिक को सम्यक्प्रकार से त्याग करके भगवान् की प्रीति के लिए करता हुआ उत्तम महा भागवत है ।

वैसा ही श्रीमद् भागवत में लिखा है—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ।।

जिन नारायण के चरणों की धूली को प्राप्त किये हुए भगवान् के दास लोग, न स्वर्ग के सिंहासन को और नहीं सार्वभौम (समस्त भूमि) के आधिपत्य को नहीं ब्रह्मा के पद को, न तो आनन्दों के आधिपत्य को और योग एवं सिद्धि को अथवा कैवल्य मोक्ष को नहीं इच्छा करते हैं । अर्थात् नहीं चाहते हैं ।

एकान्तिनो यस्य न किञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥

जिस संसार के किसी भी पदार्थ को एकान्ती महात्मा लोग, नहीं इच्छा करते हैं; जो निश्चय रूप से भगवान् के शरणापन्न हैं, वे उनके अत्यन्त आश्चर्य स्वरूप सुन्दर मङ्गल चरित्र को गाते हुए आनन्द के समुद्र में मग्न रहा करते हैं।

त्वमेवोपायभूतो मे ह्यन्यत्किञ्चिन्न विद्यते ।
इत्थं स्वभारमारोप्य सिद्धोपाये श्रियः पतौ ॥

मेरे लिये तुम ही उपाय (साधन) स्वरूप हो, निश्चय दूसरा कोई साधन नहीं है—इस प्रकार अपने रक्षण के भार को सिद्ध उपाय स्वरूप श्री के पति नारायण पर रखकर निश्चिन्त रहा करते हैं।

निवृत्त्य निर्भरतया स्वप्रयत्नेषु सर्वतः ।
यावद्देहमवस्थानं तत्प्रा प्रपत्तिरीर्यते ॥

अपने साधन रूप प्रयत्नों में सब ओर से निवृत्त होकर भगवान् पर निर्भर रूप से जब तक देह की अवस्थिति है, उस प्रकार से रहना उत्तम प्रपत्ति (शरणागति) कही जाती हैं।

भगवान् का वचन है—

भक्त्या परमया चैव प्रपत्त्या वा महामते ।
प्राप्योऽहं नान्यथा प्राप्यो मामकैः कार्यलिप्सुभिः ॥

हे श्रेष्ठ ज्ञान वाले ! मोक्ष कार्य की लालसा वाले मेरे दासों से जैसे मैं परमा भक्ति के द्वारा प्राप्य अर्थात् प्राप्ति के योग्य हूँ; वैसे ही प्रपत्ति (शरणागति) के द्वारा प्राप्य (पाने के योग्य) हूँ। अन्य उपायों से नहीं।

त्रिदण्डमवलम्बन्ते यतयो ये महाधिप ।
तेषामपि च कर्तव्यं मत्कृत्यमितरेषु किम् ॥

हे महाराज ! जो सन्यासी लोग, त्रिदण्ड को अवलम्बन करते हैं, उनका भी मेरे सम्बन्धि कर्म करना कर्त्तव्य है, फिर दूसरों के विषयों में क्या कहना है ?

इस प्रकार पहले कहे गये विशेषणों से विशिष्ट (युक्त) भागवतों के आराधन का माहात्म्य लिखा जाता है। वह पाराशर स्मृति में कहा है —

तदीयाराधनं पुण्यं वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ।
यदन्वेषणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

हे मुनि श्रेष्ठो ! पवित्र उन नारायण के दासों के आराधन को कहूँगा, जिनके अन्वेषण (खोज) मात्र मे सब पापों से छूट जाता है ।

नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
सर्वकामप्रदं पुंसामत्यन्तातिशयं हरेः ॥

इस भागवत-आराधन से श्रेष्ठ और पवित्र कर्म, तीनों लोकों में दूसरा नहीं है; जीवों के लिये सब कामनाओं का प्रदान करने वाला और नारायण का अत्यन्त अतिशय प्रिय करने वाला भागवतों का आराधन करना ही है ।

तस्मात्परतरं श्रेयो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
सकृत्संपूजनं तेषां मुक्तिदं पापिनामपि ॥

मैं सत्य बोलता हूँ—उन भागवतों के आराधन से श्रेष्ठ कल्याणकारक कर्म दूसरा नहीं है; उन भागवतों का प्रेम से एक बार अच्छी तरह से पूजन करना पापियों का भी मुक्ति देने वाला होता है ।

सहस्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो हरेः ।
सकृद्भागवतार्चायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥

भगवान् नारायण विष्णु की हजारों वर्षों की की हुई पूजा एक बार भागवतों की की हुई पूजा के सोलह भागों में से एक भाग के योग्य नहीं होती हैं अर्थात् भगवान् की पूजा से भागवतों की पूजा श्रेष्ठ है ।

सकृत्संपूजिते पुण्ये महाभागवते गृहे ।
आकल्पकोटि पितरः परितृप्ता न संशयः ॥

एक बार घर में महाभागवतों के पवित्रतापूर्वक भलीभांति पूजित होने पर करोड़ों कल्प (ब्रह्मा के दिनों) तक पितर लोग सब प्रकार से सन्तुष्ट रहा करते हैं; इसमें सन्देह नहीं है ।

यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात् ।
तथा न तुष्यति हरिर्विधिवत्स्वार्चनादपि ॥

देवों के स्वामी नारायण, जैसे महाभागवतों के पूजन से सन्तुष्ट होते हैं, वैसे नारायण, शास्त्र विधि पूर्वक अपने पूजन से भी नहीं सन्तुष्ट होते हैं ।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्णोराराधने फलम् ।
सकृद्वैष्णवपूजायां लभते नात्र संशयः ॥

साठ हजार वर्षों तक विष्णु के आराधन करने पर [जो फल होता है, उस] फल को एक बार वैष्णव की पूजा करने पर प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं हैं।

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं यज्ञैर्विधिवत्कृतैः।
सर्वं संप्राप्यते पुंसां विष्णुभक्ताभिपूजनात्॥

उस वैष्णव-पूजक के लिये दानों से क्या प्रयोजन है ? तीर्थों से क्या प्रयोजन है ? शास्त्र-विधि पूर्वक किये गये यज्ञों से क्या प्रयोजन हे ? विष्णु-भक्तों के सब प्रकार पूजन (सत्कार पूर्वक सन्तुष्ट) करने से मनुष्यों को सब वस्तु प्राप्त हो जाती हैं।

आराध्यैव जगन्नाथं यथेष्टानपरानपि।
त्यक्तभक्तार्चना व्यर्था आसारा ऊषराम्बुवत्॥

जगन्नाथ को आराधन करके ही जैसे दूसरे इच्छित पदार्थों को भी चाहता है, वैसे ही नारायण के भक्तों को अर्चना को त्याग कर व्यर्थ ऊषर भूमि पर निरंतर मेघ धारा के जल को भाँति दूसरों को पूजा करता है।

वैष्णवो यद्गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते हरिः स्वयम्।
हरिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयम्॥

वैष्णव, जिसके घर में भोजन करता है, उसके घर में स्वर्ग-मर्त्य लोक-पाताल—तीनों जगत् के प्राणी लोग भोजन करते हैं।

तोषयन्ति च तद्भक्ताः पञ्चकालपरायणान्।
सकामास्तत्फलं यान्ति निष्कामाः परमं पदम्॥

और सकामी उन नारायण के भक्तगण, पञ्चकाल परायण वालों को सन्तुष्ट करते हैं तो, उन कामनाओं के अनुसार फल को प्राप्त करते हैं और निष्काम वाले परम पद वैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं।

विवरण—ऊपर के श्लोक में 'पञ्चकाल परायणान्' शब्द आये हुये हैं, अतः भागवतों को पञ्चकाल परायण होना चाहिये। वे पंचकाल परायणता ये हैं—(१) अभिगमन (मन-वाणी-शरीर से पवित्र होते हुए भगवान् के मन्दिर में जाना), (२) उपादान (भगवान् के पूजन के लिये पुष्पादि सामग्री एकत्रित करना), (३) इज्या (भगवान् का विधिपूर्वक पूजन करना), (४) स्वाध्याय (अष्टाक्षरादि मन्त्रों का जप करना), (५) योग (भगवान् का ध्यान करना)—ये ही पंचकाल परायणता कही गई हैं।

यथा भागवतानां तु पादाम्भोरुहसेवनात्।
तथा स्वाराधने चापि न प्रीतो भगवान् हरिः॥

जैसे भगवतों के चरण कमलों के सेवन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं, वैसा भगवान् नारायण, अपने आराधन में भी नहीं प्रसन्न होते हैं।

स्कान्द पुराण में भगवान् का वचन है—

यदन्नं कुरुते नित्यं चक्षुषा गृह्यते मया।
रसं दास्यति जिह्वायामश्नामि कमलोद्भव॥

हे चतुर्मुख ! मेरा दास जिस अन्न को नित्य बनाता है अर्थात रसोई करता है, मैं उसको आँखों से ग्रहण करता हूँ और मेरा दास, जीभ पर रस को देगा, उसको मैं खाता हूँ।

भारद्वाज संहिता में लिखा है—

सद्भिर्गृहागताः सन्तः पूजनीया विशेषतः।
प्रियवाग्भिस्तथार्घ्याद्यैर्भोगैरिष्टैर्यथोचितैः॥

सद् गृहस्थों को घर में आये हुये सन्त लोग, प्रिय वचनों से तथा अर्घ्य आदिकों से और यथा उचित इच्छित भोगों के द्वारा विशेष रूप से पूजा करने के योग्य है।

अन्नाद्यमपि वा तोयं प्रभूतं स्वल्पमेव वा।
भगवत्प्रीतये नित्यं दद्याच्छुद्धाय योगिने॥

अन्न आदिकों को अथवा जल को बहुत या थोड़ा ही भगवान् की प्रसन्नता के लिये प्रतिदिन पवित्र योगी को देवे।

एकं भागवतं विप्रमर्चयेदन्नदानतः।
तस्य स्यात् सफलं जन्म तच्छृणुष्व महामते॥

महाज्ञानिन् ! एक भगवान् के दास स्वरूप ब्राह्मण को अन्न-दान से पूजा करे। उस अन्न देने वाले का जन्म सफल हो जायगा, उसको सुनो।

भगवान् का वचन है—

मत्तो मद्भक्तभक्तेषु प्रीतिरभ्यधिका भवेत्।
तस्मान्मद्भक्तभक्तश्च पूजनीयो विशेषतः॥

मुझसे मेरे भक्त के भक्तों में प्रीति अत्यधिक होनी चाहिये। तिस हेतु से मेरे भक्त का भक्त विशेष रूप से पूजन करने के योग्य है।

अध्वश्रान्तमविज्ञातमतिथिं क्षुत्पिपासितम् ।
यो न पूजयते भक्त्या तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।

जो, मार्ग से थके हुये अपरिचित भूखे-प्यासे अतिथि (अभ्यागत) को प्रीतिपूर्वक नहीं सत्कार करता है, उसको ब्रह्मघातक (ब्रह्म हत्यारा) कहते हैं ।

मद्वन्दनाच्छतगुणं मद्भक्तस्य तु वन्दनम् ।
मद्भोजनाच्छतगुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम् ।।

मुझको साष्टाङ्ग प्रणाम करने से सौ गुणा अधिक मेरे भक्त का ही साष्टाङ्ग प्रणाम करना है । मेरे भोजन करने से सौ गुणा अधिक मेरे भक्त का ही भोजन करना है ।

बृहन्नारदीय पुराण में लिखा है—

यो विष्णुभक्तान्निष्कामान् भोजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ।
त्रिः सप्त कुलमुद्धृत्य स याति हरिमंदिरम् ।।

जो संसार की कामना से रहित विष्णु-भक्तों को श्रद्धा से युक्त होकर भोजन कराता है, वह ३ × ७ = २१ एक्कीस कुल को उद्धार करके त्रिपाद्विभूति में रहे हुए नारायण के मन्दिर को जाता है ।

विष्णोः प्रसादमाकांक्षन्वैष्णवान्परितोषयेत् ।
अन्यथाऽवाप्तकामोऽसौ नैव केनापि तुष्यति ।।

विष्णु की प्रसन्नता को चाहता हुआ विष्णु के दासों (वैष्णवों) को सन्तुष्ट करे । नहीं तो वह प्राप्त समस्त कामना वाले भगवान् किसी भी प्रकार से नहीं संतुष्ट होते हैं ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैष्णवानर्चयेत्सदा ।
सर्वं तरति दुःखौघं महाभागवतार्चनात् ।।

तिस हेतु से सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा निरन्तर वैष्णवों की पूजा करे । महाभागवतों की पूजा करने से सम्पूर्ण दुःखों के समूह को पार कर जाता है ।

पूजनाद्विष्णुभक्तानां पुरुषार्थोऽस्ति नेतरः ।
तेषु च द्वेषतः किञ्चिन्नास्ति नाशनमात्मनः ।।

विष्णु के भक्तो के पूजन करने से दूसरा पुरुषार्थ (जीव के लिये चाहने योग्य फल) नहीं है, और उन विष्णु भक्तों के विषय में थोड़ा भी द्वेष करने से आत्मा का नाश करने वाला दूसरा कोई नहीं है ।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्य दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

जिसके घर से अतिथि (अभ्यागत) भग्न आशा वाला होकर उलटा लौट जाता है, वह उसको पाप देकर पुण्य को लेकर चला जाता है।

वस्त्रालंकारभूषाद्यैर्यो भागवतमर्चयेत् ।
भूष्यते तस्य वंशोऽपि श्री वृद्धि पुत्र पौत्रकैः ॥

जो वस्त्र-आभूषण (जेवर या गहना) अलंकार (सजावट) आदिकों के द्वारा भागवत को सन्तुष्ट करता है, उसका वंश भी सम्पत्ति-उन्नति-पुत्र-पौत्रों के द्वारा भूषित (सुशोभित) होता है।

अंगसंवाहनाद्यैश्च ताम्बूलैर्व्यजनैस्तथा ।
तोषयेद्भगवद्भक्तं तुष्यते च जनार्दनः ॥

अंग रूप वाहन (सवारी) आदिकों के द्वारा और ताम्बूलों (पानों) के द्वारा तथा पंखों के द्वारा भगवान् के भक्त को सन्तुष्ट करे—ऐसा करने से आश्रित जनों के दुःखों को नाश करने वाले नारायण सन्तुष्ट होते हैं।

यः प्रतिष्ठापयेद्विष्णुं वैष्णवं वा गुणान्वितम् ।
न तुल्यमिति मे बुद्धिर्भक्तपूजा शताधिका ॥

जो विष्णु को (विष्णु-मूर्त्ति को) या गुणों से युक्त वैष्णव को (वैष्णव-मूर्त्ति की) प्रतिष्ठा करावेगा—दोनों तुल्य (समान) नहीं हैं—ऐसी मेरी बुद्धि है। क्योंकि, भक्तों की पूजा, भगवान् की पूजा से सौ गुणा अधिक है।

इसके अनन्तर अवैष्णव के पूजन में निषेध का शास्त्रीय प्रमाण लिखा जाता है—

पाराशर स्मृति में लिखा है—

अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः ।
श्राद्धादिसर्वकृत्येषु वर्जयेत्तं प्रयत्नतः ॥

जो अवैष्णव ब्राह्मण है, वह चाण्डाल से भी नीच कहा गया है। उसको श्राद्ध आदि सब कर्मों में उपाय पूर्वक वर्जित करे।

अवैष्णवानां विप्राणां पूजनं वन्दनं तथा ।
यजनाध्यापने श्राद्धे भोजनं परिवर्जयेत् ॥

अवैष्णव ब्राह्मणों का पूजन करना तथा प्रणाम करना एवं यज्ञ कराना, अध्यापन करना श्राद्ध में भोजन करना इन सबको परित्याग करे।

अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपि वा ।
स पाखण्डी तु विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ।।

जो ब्राह्मण, सब धर्म्मों से युक्त भी है, परन्तु अवैष्णव है तो, वह निश्चय पाखण्डी (दिखावटी भक्त) जानने के योग्य है और सब कर्मों में निन्दित है ।

विष्णु पुराण में लिखा है—

अवैष्णवस्य पाण्डित्यं सर्वशास्त्रसमन्वितम् ।
वचस्तस्य न गृह्णीयाच्छ्वनालीढं हविर्यथा ।।

अवैष्णव का पाण्डित्य सब शास्त्रों से युक्त हो, तथापि उसके वचन को नहीं ग्रहण करे; जैसे कुत्ते के द्वारा जूठा किया हुआ हवि (खीर या तस्मै अथवा पायस) त्याज्य होता है ।

अवैष्णवगृहे भुक्त्वा पीत्वा अज्ञानतो जलम् ।
चान्द्रायणशतं कुर्यान्न च शुद्धो भवेन्नरः ।।

अज्ञान से अवैष्णव के घर में भोजन करके जल पीकर सौ चान्द्रायण व्रत करे, तथापि मनुष्य शुद्ध (पवित्र) नहीं होगा ।

सर्वे ब्रह्म वादिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ।
नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्नोदरपरायणाः ।।

हे मैत्रेय ! लिंग और पेट के परायण रहने वाले सब लोग, कलियुग के प्राप्त होने पर ब्रह्म ज्ञान की बात करेंगे, किन्तु अनुष्ठान (आचरण) नहीं करेंगे ।

यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुवर्तिनाम् ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ।।

जब-जब वेद के मार्ग के अनुवर्ति (अनुसार आचरण करने वाले) सज्जनों की कमी होती है, तब-तब कलि की वृद्धि बुद्धिमानों को अनुमान करना चाहिये ।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ।।

जो ब्राह्मण, अवैष्णव और सब धर्मों से बाहर किया हुआ है, वह रौरव नरक को प्राप्त करके चाण्डाल के जन्म को प्राप्त करेगा ।

अवैष्णवत्वं विप्राणामात्मनाशनकारणम् ।
तस्मात्तु वैष्णवत्वं हि विप्राणां श्रुतिनोदितम् ।।

ब्राह्मणों की आत्मा का नाश करने का कारण अवैष्णव करना है, तिस कारण से ही ब्राह्मणों के लिये वैष्णव होना वेदों में कहा गया है।

चतुर्वेदी च यो विप्रो वासुदेवं न बिन्दति।
वेदभारसमाक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः॥

जो ब्राह्मण चारों वेदों का जानने वाला है; किन्तु वासुदेव को नहीं प्राप्त करता है; वह निश्चय वेदों के भार से पीड़ित ब्राह्मण, गधा है।

नित्यं नैमित्तिकं काम्य त्रिविधं श्रुतिनोदितम्।
अवैष्णवानां विप्राणां कर्म तन्निष्फलं भवेत्॥

नित्य कर्म (सन्ध्या वन्दनादि)-नैमित्तिक कर्म (ग्रहणस्नान आदि कर्म)-काम्य कर्म (फल की इच्छा से किया जाने वाला)—तीन प्रकार के कर्म वेदों में कहे गये हैं। अवैष्णव ब्राह्मणों के वे सब कर्म निष्फल (व्यर्थ) हो जाते हैं।

सत्कर्मनिरताः शुद्धाः सांख्ययोगविदस्तथा।
नार्हन्ति शरणस्थस्य कलां कोटितमामपि॥

उत्तम कर्मों में लगे हुये पवित्र अन्तःकरण वाले तथा ज्ञान योग और निष्काम कर्म योग के जानने वाले, श्रीमन्नारायण के चरण कमलों को ही उपाय स्वीकार में स्थित रहने वाले के करोड़ों अंशों के एक अंश के भी योग्य नहीं हैं।

तेषां न परिशुद्धानि योनिर्विद्या च कर्म च।
ये विष्णुचरणैकान्त्यविहीना ब्राह्मणादयः॥

जो ब्राह्मण आदि वर्ण वाले, विष्णु के चरणों से एकमात्र विमुख रहने वाले हैं, उन लोगों के जन्म, ज्ञान और कर्म भी परिशुद्ध नहीं हैं।

वसिष्ठ स्मृति में लिखा है—

अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो बहुशास्त्र श्रुतोऽपि वा।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतश्च श्वाऽभिजायते॥

जो ब्राह्मण, बहुत शास्त्रों का श्रवण किया हुआ भी अवैष्णव है, वह जीवित रहा हुआ ही चाण्डाल है और मर गया तो, कुत्ते का जन्म पाता है।

क्रतुसाहस्रिकं वाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम्।
चण्डालमिव वीक्षेत वर्जयेत्सर्वकर्मसु॥

संसार में हजारों यज्ञ किये हुये भी अवैष्णव ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति देखे और सब कर्मों में वर्जित करे।

शंखचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वं कर्मास्य निष्फलम् ॥

जो श्राद्ध में शंख-चक्र-ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिकों से रहित नीच ब्राह्मण को पूजन करेगा, इस पूजन करने वाले के सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते हैं ।

भगवन्तमनुद्दिश्य न दद्यान्न यजेत् क्वचित् ।
नावैष्णवान्नं भुञ्जीत दद्यान्नावैष्णवाय च ॥

भगवान् को नहीं उद्देश्य (अभिप्राय) करके नहीं कहीं दान देवे, न यज्ञ करे, न अवैष्णवों के अन्न को खावे और अवैष्णव को न दान करे ।

अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः ।
अश्राद्धेयो ऽपांक्तेयो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

जो ब्राह्मण अवैष्णव है, चाण्डाल से भी नीच कहा गया है । क्योंकि वह श्राद्ध में नहीं बैठने के योग्य है और पंक्ति में नहीं बैठने के योग्य है; रौरव नरक को जायगा ।

भगवन्तमनुद्दिश्य यः कर्म कुरुते नरः ।
स पाखण्डीति विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

जो मनुष्य, भगवान् को नहीं उद्देश्य करके कर्म करता है, वह पाखण्डी जानने के योग्य है; इस हेतु से सब कर्मों में निन्दित है ।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममकृत्वा यश्चरेन्नरः ।
विकर्मस्थः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥

जो मनुष्य श्रुति (वेद)-स्मृति (धर्मशास्त्र) में कहे गये धर्म को न करके मनमाना आचरण करता है, वह विपरीत कर्म में रहा हुआ जानने के योग्य है, अतः सर्व कर्मों में निन्दित है ।

यो वेदार्थं गर्हयति धर्माधर्मं न विन्दति ।
न बुद्ध्यते परं लोकं स नास्तिक उदाहृतः ॥

जो वेद के अर्थ की निन्दा करता है और धर्म-अधर्म को नहीं जानता है न परलोक को जानता है, वह 'नास्तिक' कहा गया है ।

उक्तधर्मं परित्यज्य यो ह्यधर्मे प्रवर्त्तते ।
पतितः स तु विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

जो ऊपर कहे गये धर्म को परित्याग करके अधर्म में ही प्रवृत्त रहा करता है, वह पतित जानने के योग्य है और सब धर्मों से बहिष्कृत (बाहर किया हुआ) है ।

य: कर्म कुरुते विप्रो बिना विष्णवर्चनं क्वचित् ।
ब्राह्मण्याद्भ्रश्यते सद्यश्चाण्डालत्वं स गच्छति ॥

जो ब्राह्मण, कहीं विष्णु-पूजन के बिना कर्म को करता है, वह तुरन्त ब्राह्मण्य अर्थात् ब्राह्मण-धर्म से गिर जाता है और चाण्डालत्व (चाण्डाल के धर्म) को प्राप्त करता है।

अर्चयित्वा तु गोविन्दमितरानर्चयेत् पृथक् ।
अवैष्णवत्वं तस्यापीतरभक्त्या भवेद्ध्रुवम् ॥

गोविन्द की पूजा करके दूसरे देवों को अलग पूजा करे तो, उसका भी दूसरे देवों की भक्ति से निश्चय अवैष्णवत्व हो जायगा।

यो नरो वैष्णवं चिह्नं धृत्वा च तमसा चरन् ।
त्यजेच्चेद्वैदिकं धर्मं सोऽपि पाषण्डतां व्रजेत् ॥

जो मनुष्य वैष्णव चिह्न को धारण करके फिर तमो गुण से आचरण करता हुआ यदि वैदिक धर्म को त्याग देवे तो, वह भी पाषण्डता (पाषण्ड धर्म) को प्राप्त करेगा।

नैसर्गिकं तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ।
तद्विना वर्तते मोहादात्मचौरः स कथ्यते ॥

परन्तु, जीवों का स्वाभाविक विष्णु का सनातन दासत्व धर्म है; उस विष्णु-दासत्व के बिना अज्ञान से रहा करता है, वह आत्मा का चुराने वाला कहा जाता है।

शंखचक्रविहीनास्तु देवतान्तरपूजकाः ।
द्वादशीविमुखा विप्राः शैवाश्चावैष्णवाः स्मृताः ॥

शंख-चक्र से रहित रहने वाले और नारायण को छोड़कर अन्य देवों की पूजा करने वाले, द्वादशी व्रत से विमुख रहने वाले ब्राह्मण लोग तथा शैव (शिव के उपासक) लोग अवैष्णव कहे गये हैं।

अवैष्णवानां संसर्गात्पूजनाद्वन्दनादपि ।
यजनाध्ययनात्सद्यो वैष्णवत्वाच्च्युतो भवेत् ॥

अवैष्णवों के संसर्ग से, पूजन करने से और प्रणाम करने से भी तथा उनके द्वारा यज्ञ करने से एवं वेदों के अध्ययन करने से तुरन्त वैष्णवत्व (वैष्णव-धर्म) से च्युत हो जायगा अर्थात् गिर जायगा।

सर्वत्रावैष्णवान्विप्रान्पतितांश्च विवर्जयेत् ।
वैष्णवानेव विप्रांस्तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥

सम्पूर्ण वैदिक कर्मों में अवैष्णव ब्राह्मणों को और पतितों को वर्जित करे। इसलिए वैष्णव ब्राह्मणों को ही सब कर्मों में युक्त करे अर्थात् लगावे।

फिर भी वैष्णव का उत्कर्ष (बड़प्पन) लिखा जाता है—

पद्म पुराण में लिखा है—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैष्णवान्पूजयेत्सदा ।
सर्वं नश्यति दुःखौघं महाभागवतार्चनात् ॥

तिस हेतु से सम्पूर्ण प्रयत्न के द्वारा सब काल में वैष्णवों का पूजन करे। महा भागवतों के पूजन करने से सम्पूर्ण दुःखों का समूह नष्ट हो जाता है।

मधुपर्कविधानेन यथाशक्त्या द्विजोत्तम ॥
महाभागवताञ्छ्रेष्ठान्पूजयेद् गृहमागतान् ।

हे ब्राह्मणोत्तम ! घर में आये हुए श्रेष्ठ महाभागवतों को मधु पर्क के विधान से यथा-शक्ति के द्वारा पूजन करे।

शुभ्रे पात्रान्तरे रम्ये पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः ॥

रमणीय सुन्दर थाल आदि पात्र के भीतर प्रेम से दोनों पावों को धोकर सुगन्धित फूल आदिकों से, वस्त्रों से और भूषण आदिकों से पूजन करे।

ताम्बूलेन फलैर्वापि यथा शक्त्या समर्चयेत् ।
पुनः प्रणम्य भक्त्या च शनैस्तत्र निवर्तते ।

अथवा पान से और फलों के द्वारा भी यथा-शक्ति अच्छी तरह से पूजन करे। फिर भक्ति (प्रेम) से प्रणाम करके धीरे से वहाँ लौटे।

उपचारं भृशं कुर्याद्यथाविधि समन्वितः ।
वैष्णवान्भोजयेद्विप्रान्भक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥

जैसी शास्त्र में आज्ञा हो, उस विधि से युक्त होकर अतिशय सेवा करे। पुनः वैष्णव ब्राह्मणों को प्रेम से भोजन करावे और दक्षिणा देवे।

एवमभ्यर्चयेन्नित्यं यावज्जीवमतन्द्रितः ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ॥

जब तक जीवित रहे, इस प्रकार रोज (प्रतिदिन) आलस्य-रहित होकर पूजन करे। ऐसा करने से करोड़ों कुल को उद्धार करके विष्णु के लोक (त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ) को प्राप्त करेगा।

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात्परतरं देवि ! तदीयानां च पूजनम्॥

हे देवि ! सबके आराधनों में विष्णु का आराधन करना श्रेष्ठ है और उससे अति श्रेष्ठ उनके दासों का पूजन करना है।

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः।
न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः॥

और जो गोविन्द की पूजा करके ही उनके दासों का नहीं पूजन करे तो, वह भागवत (भगवान् का दास) नहीं जानने के योग्य है; केवल पाखण्डी कहा गया है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

जो श्रद्धा के साथ नारायण के लिए पूजा को मूर्त्ति में ही चेष्टा करता है; उनके भक्तों में और दूसरों में नहीं। अतः वह भक्त मूर्ख कहा गया है।

'पाराशर स्मृति' में कहा है—

अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः।
आकारत्रयसंपन्नास्ते वै भागवताः स्मृताः॥

पाँच अर्थों के [१—अपना जीव स्वरूप, २—परमात्मा का स्वरूप, ३—पुरुषार्थ स्वरूप, ४—उपाय स्वरूप, ५—विरोधी स्वरूप के] तत्त्वों के जानने वाले, पाँच संस्कारों से युक्त रहे हुये और तीन आकारों [अनन्य शेषत्व—अनन्य भोग्यत्व—अनन्य शरणत्व] से सम्पन्न रहने वाले जो हैं, वे ही भागवत कहे गये हैं।

तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी ते पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः॥

तप्त शंख-चक्र, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक तथा नाम, मन्त्र और पाँचवाँ याग (शरणागति)—ये ही वे पाँचों संस्कार परम एकान्ति भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष के कारण हैं।

द्वे मूर्ती वासुदेवस्य चरं चाचरमेव च ।
अचरं ब्रह्मसंयुक्तं चरं भागवताः स्मृताः ॥

वासुदेव को दो मूर्त्तियाँ (शरीर) चलने वाली और नहीं चलने वाली ही हैं। अचर ब्रह्म से संयुक्त हैं और चर भागवत (भगवान् के दास) कहे गये हैं।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में लिखा है—

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥

क्योंकि, परमात्मा की प्राप्ति के लिये भगवान् ने ही जिनको उपाय (साधन) कहे हैं, अज्ञानी पुरुषों के लिए निश्चय उन भागवतों (भगवान् के दासों) को ही उपाय जानो ।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

जो अपने को सकल प्राणियों में भगवान् का शरीर रूप देखे और सकल प्राणियों को अन्तर्यामी स्वरूप भगवान् में देखे तो, यह भागवतों (भगवान् के दासों) में उत्तम कहा गया है ।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययं क्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥

जो नारायण की स्मृति के द्वारा देह-इन्द्रिय-प्राण-मन-बुद्धियों की उत्पत्ति-विनाश-क्षुधा (भूख)-भय-शब्द आदि विषयों के भोगने की इच्छा रूप कठोर संसार के धर्मों से नहीं विमोहित होता हुआ (वह) भागवतों में (भगवद्भक्तों में) प्रधान है ।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ।
वासुदेवैकानिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

जिसके चित्त में कामना से युक्त पुण्य-पाप कर्मों के बीजों की उत्पत्ति नही होती, वासुदेव एकमात्र आधार वाला है; वही भागवतों (भगवद्भक्तों) में उत्तम है ।

न यस्य जन्म कर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहं भावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

जिसका जन्म-कर्मों से और वर्ण-आश्रम की उत्पत्तियों से इस देह में अहंभाव नहीं होता और न बन्धन होता है, वही नारायण का प्यारा है ।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

जिसका अपनी सम्पत्तियों में अपना या पराया—इस प्रकार भेद रूप से ज्ञान नहीं है; सकल प्राणियों में समान और शान्त रहा करता है, वही भागवतों (भगवान् के दासों) में उत्तम (श्रेष्ठ) है ।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्द्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥

नहीं जीते हुये मन वाले देवता आदिकों से खोजने के योग्य होने से तीनों भुवनों के वैभवों (ऐश्वर्यों) के हेतु (कारण) के लिए भी आलस्य-रहित (मूढता से रहित) नारायण का एकमात्र स्मरण करने वाला जो थोड़ा आधा पलकमात्र भी भगवान् के चरण कमल से नहीं चलायमान अर्थात् विचलित होता है, वह वैष्णवों में अग्रगण्य है ।

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

अनिच्छा से कहे गये भी पापों के समूहों के नाश करने वाले हरि, प्रत्यक्ष जिसके हृदय (मन) को नहीं त्यागते हैं; प्रेम को रस्सी से बाँध लिया है चरण-कमलों को जिसने, वह भागवतों (भगवान् के दासों) में प्रधान कहा हुआ होता है ।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम् ॥

हे राजन् ! जो कर्म को साधन-बुद्धि से परित्याग करके मन-वाणी-शरीर रूप सब प्रकार से शरण्य (रक्षक) मुकुन्द (मुक्ति देने वाले) को उपाय प्राप्त किया हुआ यह, देवता-ऋषि-भूत-यथार्थवक्ता मनुष्यों का तथा पितरों का किङ्कर (दास) नहीं है और न ऋणी ही है ।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धिनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥

सर्वश्रेष्ठ स्वामी नारायण, त्याग दिया है दूसरे पदार्थों को जिसने—ऐसे अपने चरण-मूल की सेवा करने वाले प्यारे भक्त के हृदय में अन्तर्यामी रूप से बैठे हुये, जो इस भक्त के विरुद्ध कर्म या किसी प्रकार ऊपर से नीचे गिरा हुआ कर्म है, सबको धुन लेते हैं ।

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥

नहीं जीते हुए इन्द्रियों वाला मेरा भक्त, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विषयों के द्वारा बाध्यमान होता हुआ भी अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति के द्वारा शब्दादि विषयों से नहीं तिरस्कृत होता है ।

भगवद् गीता में कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

अत्यन्त दुष्ट आचरण करने वाला भी यदि मुझको अनन्य पात्र होकर भजता है तो, वह साधु (श्रेष्ठ) ही मानने के योग्य है । क्योंकि, वह भलीभांति मुझ में व्यवसाय वाला है ।

स्कन्द पुराण में कहा है—

विष्णुभक्तिसमायुक्तो मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी ।
पुनाति सकलाँल्लोकान्सहस्रांशुरिवोदितः ॥

विष्णु की भक्ति में सम्यक्प्रकार से युक्त रहा हुआ झूठा आचरण वाला भी आश्रम धर्म से रहित है, तो भी सकल लोकों को पवित्र करता है; सूर्य जैसे उदय हुआ अन्धकार को नाश कर देता है ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, या शूद्र अथवा दूसरा (वर्ण संकर-यवन-अँग्रेज प्रभृति) हो, विष्णु की भक्ति से अच्छी तरह युक्त रहा हुआ सब उत्तमों से उत्तम है ।

दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकः पुरा ।
समाश्रयेदादिदेवं श्रद्धया शरणं हि यः ॥

क्योंकि जो दुराचारी सब मांस आदि का खाने वाला, कृतघ्न (किये हुये उपकार को नहीं मानने वाला), नास्तिक (ईश्वर-वेद को नहीं मानने वाला) भी पहले रहा हो, श्रद्धापूर्वक उपाय स्वरूप आदि देव नारायण की शरणागति करे ।

निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात्परमात्मनः ।

परमात्मा के प्रभाव से उस प्राणी को दोष-रहित जानो ।

वैसा ही महर्षि हारीत ने अपनी स्मृति में कहा है—

भगवद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकश्मलः ।
श्वपचोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदाढ्योऽपि नास्तिकः ॥

भगवान् की भक्ति रूप प्रज्वलित अग्नि से भस्म हो गया है दूषित जाति का पाप जिसका—ऐसा चाण्डाल भी ज्ञानियों के द्वारा श्लाघा (प्रेम) करने के योग्य है, नास्तिक वेदधन वाला ब्राह्मण भी नहीं ।

वामन पुराण में लिखा है—

श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम् ।
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ॥

संसार में अवैष्णव ब्राह्मण को चाण्डाल की भाँति, नहीं देखे । वैष्णव, वर्णों से बाहर के योग्य भी हो, तथापि तीनों भुवनों को पवित्र करता है ।

शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा ।
वीक्षते जातिसामान्यं स याति नरकं ध्रुवम् ॥

भगवद्भक्त शूद्र या निषाद तथा चाण्डाल को जाति की समानता (साधारणता) को देखता है तो, वह निश्चय नरक को जाता है ।

निन्दां कुर्वन्ति ये मूढा वैष्णवानां महात्मनाम् ।
पतन्ति पितृभिस्सार्धं महारौरवसंज्ञकम् ॥

जो प्राणी लोग, महात्मा वैष्णवों की निन्दा करते हैं; वे पितरों के साथ 'महा रौरव' नामक नरक में गिरते हैं ।

स्कान्द पुराण में लिखा है—

अर्चावतारोपादानं वैष्णवोत्पत्तिचिन्तनम् ।
मातृयोनिपरीक्षायास्तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥

अर्चा अवतार (भगवान् की मूर्ति) के उपादान (काठ-सोना-चाँदी आदि जिस द्रव्य से मूर्ति निर्माण की गई हो, उस द्रव्य) को और वैष्णवों की उत्पत्ति (जाति) के चिन्तन करने को ज्ञानी लोग माता की योनि देखने के तुल्य (समान) कहते हैं ।

श्रीमद् भागवत में प्रह्लाद का वचन—

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनं हितार्थं प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ॥

पद्मनाभ भगवान् के चरण कमल से विमुख रहने वाले बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण से श्रेष्ठ चाण्डाल को मानता हूँ; क्योंकि उन नारायण में युक्त मन वाले का वचन आत्म कल्याण रूप हित के लिये होता हुआ परिवार के सहित प्राण को पवित्र करता है, परन्तु अपने को अधिक मानने वाला नहीं पवित्र करता है।

भगवान् का वचन है—

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

चारों वेदों का जानने याला ब्राह्मण, मेरा प्यारा नहीं है, मेरा भक्त चाण्डाल प्यारा है; उसको दान देना चाहिये और उससे दान लेना चाहिये। क्योंकि जैसे मैं पूज्य हूँ, वैसे वह पूज्य है।

मन्निमित्तकृतं पापं मद्धर्माय च कल्पते।
मामनादृत्य धर्मोऽपि पापं स्यान्मत्प्रभावतः॥

मेरे निमित्त से किया हुआ पाप भी मेरे धर्म के लिये होता है। मुझको अनादर करके धर्म भी मेरे प्रभाव से पाप हो जायगा।

मन्निमित्तकृतं कर्म कर्मलोपो भवेद्यदि।
तत्कर्म कुर्वते नित्यं तिस्रः कोट्यो महर्षयः॥

मेरे निमित्त से किया हुआ कर्म, यदि कर्म का लोप हो जावे तो, उस कर्म को तीन करोड़ महर्षिगण नित्य किया करते हैं।

वर्णरूपाश्रमोवासपूर्ववृत्तानिरूपणम्।
श्रीवैष्णवस्य यः कुर्यात् स महापापसंज्ञकः॥

जो, श्रीवैष्णव की जाति, रूप, आश्रम, वास और पूर्व के आचरण का निरूपण करे तो; वह महापाप नाम वाला होता है।

म्लेच्छतुल्याः कुलीनास्ते ये न भक्ता जनार्दने।
संकीर्णयोनयः पूता ये भक्ता मधुसूदने॥

वे कुलीन, मुसलमान के समान हैं, जो जनार्दन के विषय में भक्त नहीं हैं। वे वर्णसंकर जन्म वाले पवित्र हैं, जो मधुसूदन के विषय में भक्ति करने वाले हैं।

श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में भगवान् का वचन है—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

क्योंकि, हे ब्राह्मण ! अस्वतन्त्र की भांति मैं भक्तों के पराधीन (परतन्त्र) हूँ। उत्तम (श्रेष्ठ) भक्तों के द्वारा ग्रस्त हृदय वाला और भक्त जनों का प्यारा हूँ।

महाभारत में कहा है—

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलकेन च ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ।।

भक्तों पर दया करने वाले भगवान्, भक्तों के लिये तुलसी दल मात्र से और जल की चुल्लू मात्र से अपनी आत्मा को बेच देते हैं।

ऋषभदेव का वचन है—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।

क्योंकि, जलमय तीर्थ सब और मिट्टी-पत्थरों के विकार रूप देव सब, नहीं पवित्र करते हैं—ऐसा नहीं है अर्थात् पवित्र करते हैं। किन्तु, वे सब बहुत काल होने से पवित्र करते हैं; परंतु साधु लोग, दर्शन से ही पवित्र कर देते हैं।

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ।।

वे त्यागी शान्त (स्थिर) ब्रह्मनिष्ठ लोकों को पवित्र करने वाले साधु लोग, शरीर के सम्पर्क मात्र से पाप को हरण करते हैं; क्योंकि पापों को नाश करने वाले नारायण उन साधुओं में रहा करते हैं।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यं ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ।।

साधु लोग मेरे लिये हृदय स्वरूप हैं और मैं साधुओं का हृदय स्वरूप हूँ। वे लोग, मुझसे अन्य को नहीं जानते हैं और मैं उनसे थोड़ा भी अलग नहीं हूँ।

वाराह पुराण में लिखा है—

जाह्नव्यादीनि तीर्थानि पापनिष्कृतिहेतवे ।
कांक्षन्ति हरिदासानां स्पर्शनं हरिदासवत् ।।

गङ्गा आदि तीर्थ सब, पापों को नाश के हेतु के लिए नारायण के दासों का स्पर्श करना नारायण के दासों की भांति चाहते हैं।

निवसन्ति महात्मानो यत्र चैकान्तिनो द्विजाः ।
देवा देवर्षयो नित्यं तद्देशं पर्युपासते ।।

एकान्ती (एकमात्र श्रीमन्नारायण की आराधना करने वाले) द्विज (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) महात्मा लोग जहाँ निवास करते हैं, उस देश (स्थान) को सर्वदा देवता और देवर्षि लोग एकाग्र चित्त से ध्यान किया करते हैं।

यत्र भागवता नित्यं पञ्चकालपरायणाः।
निवसन्ति सदा युक्तास्तत्क्षेत्रं नैमिषं विदुः॥

पाँचों कालों में परायण रहने वाले [१—अभिगमन (मन-वचन-कर्म से पवित्र होकर भगवान् के मन्दिर में जाना), २—उपादान (भगवान् के पूजन के लिए पुष्पादि सामग्री एकत्रित करना), ३—इज्या (भगवान् का विधिपूर्वक पूजन करना), ४—स्वाध्याय (अष्टाक्षर-द्वय-चरम मन्त्रों का अर्थानुसन्धान पूर्वक जप करना), ५—योग (भगवान् का ध्यान करना)—इस प्रकार निरन्तर युक्त रहने वाले भगवान् के दास लोग, सदा जहाँ निवास करते हैं, उस स्थान को नैमिष (आठ भू-वैकुण्ठों में एक वैकुण्ठ) जानिए।

मद्भक्तजनसंमर्दपादपांसुविसर्जनात्।
चतुःसागरपर्यन्तं पावनं स्याद्वसुन्धरे॥

हे पृथ्वि! मेरे भक्त जनों के पाँवों से मर्दन की गई धूली के छोड़ने से (ऊपर उड़ाने से) चार समुद्रों तक पवित्र हो जायगा।

श्रीमद्भावत में लिखा है—उद्धव का वचन है—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

मैं वृन्दावन में डालियों से रहित वृक्ष-लता-औषधियों में कुछ भी इन गोपियों के चरणों की धूली का सेवन करने वाला हो जाऊँ! अहो! जिन गोपियों ने दुस्तर त्यागना रूप अपने परिवार को और श्रेष्ठ मार्ग को छोड़कर श्रुतियों (वेद के मन्त्रों) के द्वारा खोजने के योग्य मुकुन्द (मुक्ति देने वाले) की प्राप्ति को सेवन किया।

महाभागवता यत्र वसन्ति विमलाशयाः।
तद्देशं मङ्गलं प्रोक्तं यथा विष्णुपदं शुभम्॥

निर्मल अन्तःकरण वाले महान् भगवान् के दास लोग जहाँ वास करते है, उस देश को मङ्गल स्वरूप कहा गया है, जैसे विष्णु का स्थान मङ्गल स्वरूप है।

निमिषं निमिषार्द्धं वा यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः।
तदेव परमं स्थानं तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥

वैष्णव लोग, जहाँ निमिष (एक पलक) या आधा पलक मात्र रहते है, वही श्रेष्ठ स्थान है; वही तीर्थ है और वही तपोवन है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः॥

मैं, सदा संसार के पदार्थों की इच्छा नहीं करने वाले, शान्त (स्थिर चित्त वाले), वैर भाव से रहित, समान रूप से आत्मा को सब शरीरों में ज्ञान के द्वारा देखने वाले, मुनि के पीछे-पीछे चलता हूँ—इस प्रकार इनके चरणों की धूलियों से अपने को पवित्र करता हूँ।

वाराह पुराण में लिखा है—

रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने।
कृतप्रयत्नो ह्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभते च मोक्षम्॥

कर्म-ज्ञान-भक्ति आदि उपायान्तरों में मोक्ष के साधन रूप से किया हुआ प्रयत्न वाला या नहीं किया हुआ प्रयत्न वाला (एकमात्र भगवान् पर निर्भर रहने वाला), गली के बीच में, मूत्र-विष्ठा के मध्य में, चाण्डाल के घर में अथवा श्मशान में देह के अन्त होने पर निश्चय मोक्ष को प्राप्त करता है।

नयामि परमं स्थानमर्चिरादिगतिं विना।
गरुडस्कन्धमारोप्य यथेष्टमनिवारितम्॥

सूर्य की किरण आदि मार्ग के बिना किसी से निवारण नहीं किये गये स्वेच्छानुसार परम स्थान स्वरूप त्रिपाद्विभूति महावैकुण्ठ को गरुड़ के कन्धे पर बिठा कर ले जाता हूँ।

वैष्णवः परमो धर्मो वैष्णवः परमं तपः।
वैष्णवः परमाराध्यो वैष्णवः परमा गतिः॥

वैष्णव, परम (श्रेष्ठ) धर्म है, वैष्णव, परम तप है, वैष्णव, श्रेष्ठ आराधन करने के योग्य है और वैष्णव, उत्तमा गति है।

मद्भक्तं श्वपचं वापि निन्दां कुर्वन्ति ये नराः।
पद्मकोटिशतेनापि न क्षमामि वसुन्धरे॥

जो मनुष्य, मेरे भक्त चाण्डाल की भी निन्दा करते हैं; हे वसुन्धरे! उनको सौ करोड पद्म वर्षों के होने से भी नहीं क्षमा करता हूँ।

या प्रीतिर्मयि संवृत्ता मद्भक्तेषु सदाऽस्तु सा।
अवमानक्रिया तेषां संहरत्यखिलं शुभम्॥

जो प्रीति (प्रेम), मेरे विषय में सम्यक्प्रकार से अनुष्ठित होवे, वह मेरे भक्तों के विषय में सदा होवे। उनका तिरस्कार करना रूपिणी क्रिया सम्पूर्ण मङ्गल कार्य को नाश कर देती है।

अनाचारान्दुराचारानज्ञानान् हीनजन्मनः ।
मद्भक्ताञ्छ्रोत्रियो निन्दन्सद्यश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥

वेद-वेदान्त का ज्ञाता, आचरणों से रहित, दुष्ट आचरण वाले, अज्ञानी, नीच वर्णों में जन्म लेने वाले मेरे भक्तों की निन्दा करता हुआ तुरन्त चाण्डालता को प्राप्त करेगा।

ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्मा जी ने कहा है—

नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छंके भृशं ब्रह्मविदोऽवमानात् ॥

मैं, देवराज के वज्र से नहीं डरता हूँ, न तीन आँखों वाले महादेव के त्रिशूल मे डरता हूँ, न यम के दण्ड से डरता हूँ, न तो अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु और कुबेर के अस्त्र से डरता हूँ, केवल ब्रह्म वेत्ता (ब्रह्म ज्ञानी) के निरादर से अत्यन्त डरता हूँ।

दारुचर्मणि निःश्वासो दहते लोहपञ्चकम्।
साधुसज्जनसन्तापः किमाश्चर्यं कुलक्षयम् ॥

भाथी का निःश्वास, पांच प्रकार के लोहे को भस्म कर देता है तो, साधु-सज्जनों का सताना रूप सन्ताप, यदि वंश को नाश करता है, तब क्या आश्चर्य है ?

स्कान्द पुराण मे यम का वाक्य है अपने दूतों के प्रति—

दुराचारो दुष्कुलोऽपि सदा पापरतोऽपि वा।
भवद्भिः सर्वथा त्याज्यो विष्णुं च भजते नरः ॥

जो मनुष्य, विष्णु को ही भजता है, वह दुराचारी और नीच कुल वाला भी हो अथवा सदा पापों में लगा हुआ भी होवे, आप लोगों को सब प्रकार से त्याग देना चाहिए।

न ब्रह्मा न शिवाग्नीन्द्रा नाहमन्ये दिवौकसः।
न शक्ता निग्रहं कर्तुं वैष्णवानां महात्मनाम् ॥

वैष्णव महात्माओं को दण्ड (सजा) करने के लिये समर्थ न ब्रह्मा, शिव-अग्नि-इन्द्र हैं, न मैं हूँ और न दूसरे स्वर्ग-स्थान वाले देवगण हैं।

वैष्णवा विष्णुवत्पूज्या मम मान्या विशेषतः ।
तेषां कृतेऽवमाने तु विनाशो जायते ध्रुवम् ॥

वैष्णव, विष्णु के समान पूजा करने के योग्य हैं और विशेष रूप से मेरे मान्य (आदर करने के योग्य) हैं: उनके निरादर करने पर तो निश्चय विनाश होता है।

ब्रह्मलोके न ते वासो न ते वासो हरालये ।
नालये लोकपालानां वैष्णवानां पराभवे ॥

वैष्णवों के तिरस्कार करने पर ब्रह्मा के लोक में तुम्हारा वास नहीं हो न तुम्हारा वास महादेव के स्थान (कैलाश) में होगा और न लोकपालों के स्थान वास होगा।

वैसा ही विष्णु पुराण में यम का वाक्य है—

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥

यमराज, रस्सी हाथ में लिये हुये अपने दूत को देखकर उसके कान के मूल में निश्चय रूप से कहता है—"मधुसूदन के शरणागतों को छोड़ दो; मैं दूसरे मनुष्यों का स्वामी हूँ; वैष्णवों का नहीं।"

विवरण—कान में लगकर अत्यन्त गुप्त बात कही जाती है। कान में लगकर दूत से यमराज के कहने का आशय यह था कि लोग यदि सुन जायँगे कि वैष्णवों का स्वामी यमराज नहीं है तो, सब के सब वैष्णव हो जायँगे तो, नरक कोई नहीं जायगा।

श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध में यमराज का वाक्य है—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥

जीभ, भगवान् के गुणों को और नाम धारण करने योग्य को नहीं बोल है, और चित्त, उन नारायण के चरण कमल का नहीं स्मरण करता है, जिस मस्तक एक समय भी कृष्ण को नहीं नमस्कार करता है, उन विष्णु सम्बन्धि क को नहीं करने वाले नीचों को लावो।

भार्गव पुराण में यम का वाक्य है—

दूषयेद्भगवद्भक्तं यस्तु वाक्यैर्नराधमः ।
मूको भवति जन्मानि सहस्राणि शतानि सः ॥